नागरीप्रचारिणी पत्रिका

[नवीन संस्करण]

पाँचवाँ भाग—संवत् १९८१

(१) मुगल बादशाहों के जुलूसी सन् (राज्यवर्ष)

[लेखक—रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर]

हिंदी साहित्य-सेवियों में दिन दिन इतिहास की ओर रुचि बढ़ती ही जाती है। मुसलमानों के पूर्व के इतिहास के लिये तो हमारे यहाँ के प्राचीन शिलालेख, दानपत्र, सिक्के एवं संस्कृत आदि भाषाओं के ऐतिहासिक ग्रंथ ही विशेष उपयोगी हैं, परंतु मुसलमानों के समय के हिंदू राजाओं आदि के इतिहास के लिये फ़ारसी तवारीखें भी उपयोगी साधन हैं। मुगल बादशाहों के समय के इतिहास से संबंध रखनेवाली फ़ारसी तवारीखों में एवं फ़ारसी शिलालेखों तथा मुगलों के सिक्कों में भिन्न भिन्न घटनाओं के वर्ष या तो हिजरी सन् में या सन् जुलूस (राज्यवर्ष) में दिए हुए मिलते हैं। प्रत्येक बादशाह के सन् जुलूस के दिन बड़ा उत्सव मनाया जाता था, भोज होते थे और बादशाहों को भेंटें की जाती थीं। बाबर और हुमायूँ ने थोड़े ही समय तक राज्य किया और उनका राज्य सुस्थिर भी न होने पाया, जिससे उनके सन् जुलूस का उत्सव मनाया जाता हो, ऐसा पाया नहीं जाता। यह उत्सव अकबर बादशाह के समय से बराबर मनाया जाने लगा था।

बादशाह अकबर ने मुसलमानी धर्म तथा हिजरी सन् को मिटाने के विचार से इस्लाम धर्म के स्थान में दीन-इलाही नामक नया धर्म, और हिजरी सन् के स्थान में इलाही सन् चलाने का उद्योग किया। नए धर्म के प्रचार में तो वह सफल न हुआ, परंतु इलाही सन् का प्रचार उस समय की तवारीखों में किसी प्रकार हो ही गया। इस सन् का प्रारंभ बादशाह अकबर की गद्दीनशीनी के वर्ष से माना गया और जहाँगीर के समय तक इसका प्रचार बना रहा। शाहजहाँ ने अपना सन् जुलूस हिजरी सन् के अनुसार मनाना जारी किया। अकबर के पहले के दिल्ली के मुसलमानों ने हिंदुओं को सैनिक सेवा के उच्च पदों पर बहुधा नियत न किया; परंतु अकबर ने उनकी इस नीति को हानिकारक जानकर अपनी सेना में सुन्नी, शिया और राजपूतों (हिंदुओं) के तीन दल इसी विचार से नियत किए कि यदि कोई एक दल बादशाह के प्रतिकूल हो जाय, तो दूसरे दल उसको दबाने में समर्थ हो सकें। इसी सिद्धांत को सामने रखकर अकबर ने सैनिक सेवा के लिये मनसब का तरीका जारी किया और कई हिंदू राजाओं, सरदारों तथा योग्य राजपूतों आदि को भिन्न भिन्न पदों के मंसबों पर नियत किया। अकबर के पीछे क्रमशः मंसब के प्रबंध में शिथिलता आती गई और अंत में तो वह नाम मात्र का अधिकार रह गया।

मंसबदारी की इस प्रथा के कारण कई हिंदू राजाओं, सरदारों तथा सैनिक वर्ग के अन्य हिंदुओं का बहुत कुछ वृत्तांत फ़ारसी तवारीखों में मिलता है; परंतु उनमें घटनाओं का समय या तो प्रत्येक बादशाह का सन् जुलूस या हिजरी सन् में लिखा हुआ मिलता है। मुगल-काल के हिंदू राजाओं आदि का वृत्तांत संग्रह करने में यह जानने की आवश्यकता रहती है कि प्रत्येक बादशाह का प्रत्येक सन् जुलूस विक्रम संवत् के कौनसे वर्ष, मास, पक्ष और तिथि एवं ईसवी सन् के कौनसे वर्ष, मास और तारीख को प्रारंभ हुआ। मुझे जब बार बार गणित

कर इसका निश्चय करना पड़ा, तब मुझे यह विचार हुआ कि यदि एक बार अकबर से लेकर बहादुरशाह दूसरे के कैद होने तक के प्रत्येक बादशाह के सन् जुलूस के प्रारंभ के दिन के विक्रमी और ईसवी वर्ष, मास, तिथि एवं तारीख आदि का निर्णय कर लिया जाय, तो आगे के लिये गणित करना मिट जायगा। इसी विचार से मैंने यह जंत्री अपने लिये तैयार की थी; परंतु कई मित्रों ने इसे देखकर यह आग्रह किया कि यदि यह जंत्री छप जाय तो इससे हिंदी के इतिहास-लेखकों को भी कुछ सुभीता हो जाय। इसी उद्देश्य से नागरीप्रचारिणी पत्रिका के प्रेमी पाठकों के सामने यह जंत्री प्रस्तुत की गई है।

इस जंत्री के तैयार करने में मेरे स्वर्गवासी मित्र मुंशी देवीप्रसाद जी के संग्रह से विक्रम संवत् १६०४ से लेकर वि० सं० १९१४ तक के मारवाड़ के प्रसिद्ध ज्योतिषी चंडू जी के वंशजों के बनाए हुए पंचांग बहुधा मिल गए, जिनसे प्रत्येक मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा की घड़ी तथा पल मालूम हो सके और चंद्रोदय के निर्णय करने में उनसे बहुत कुछ सहायता मिली। इसके लिये तथा समय समय पर उचित सलाह देने के लिये मैं मुंशी जी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। अकबर और जहाँगीर बादशाहों से सन् जुलूस इलाही सन् के नूतन वर्ष के दिन मनाए जाते थे। इसलिये उनके इलाही सनों के साथ हिजरी, विक्रमी और ईसवी सन् भी दिए गए हैं; और जिन जिन विक्रमी संवतों में जो जो अधिक मास अथवा क्षयमास आए हैं, वे नीचे टिप्पणी में बतला दिए गए हैं। मुसलमानों के प्रत्येक नए मास का प्रारंभ चंद्र के दर्शन से ही माना जाता है। मैंने शुक्ल प्रतिपदा की घड़ियों के हिसाब से हिजरी मास का प्रारंभ माना है। अतएव यदि मुसलमानी तारीख में कहीं अंतर होगा, तो एक दिन का ही होगा, इससे अधिक नहीं। ऐसा ही अँग्रेजी तारीखों के लिये भी समझना चाहिए। प्रत्येक सन् जुलूस का उत्सव बादशाह की गद्दी-नशीनी की

तारीख को माना जाता हो, ऐसा ही नहीं है। कभी कुछ दिन पहले भी मनाया जाता था। अकबर और जहाँगीर का सन् जुलूस ता० १ फरवरीदन को ही होता था। पहला सन् जुलूस गद्दी-नशीनी का दिन ही समझना चाहिए। वास्तव में जुलूस का उत्सव दूसरे वर्ष से ही मनाया जाता था; परंतु तवारीखों में सन् १ जुलूस भी लिखा जाता था। इसलिये मैंने सन् १ जुलूस के प्रारंभ की तारीख वही दी है जिस तारीख से दूसरा सन् जुलूस मनाया गया। परंतु प्रारंभ में प्रत्येक बादशाह की गद्दी-नशीनी का सन्, मास और तारीख दे दी है। उसी दिन को वास्तव में पहले सन् के प्रारंभ की तारीख समझना चाहिए।

अकबर।

जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह अपने पिता हुमायूँ का देहांत होने के बाद ता० २ रबि उस्सानी हिजरी सन् ९६३ (विक्रमी १६१२ फाल्गुन सुदि ४ = ईसवी सन १५५६ तारीख १४ फरवरी) को गद्दी पर बैठा। इसने अपने राज्य के २९ वें वर्ष अर्थात् हि० स० ९९२ (वि० सं० १६४१ = ई० स० १५८४) से हिजरी सन् के स्थान पर इलाही सन् का प्रचार किया और उस समय के पूर्व के अपने राज्य-वर्षों का हिसाब लगाकर उसका प्रारंभ अपनी गद्दी-नशीनी के वर्ष से माना और तवारीखों में भी उसी गणना के अनुसार बादशाह अकबर के जुलूसी सन् (राज्यवर्ष) लिखे गए। इलाही सन् के महीने मुसलमानी नहीं, किंतु ईरानी हैं; और अकबर का जलूसी सन् उसकी गद्दी-नशीनी के दिन से नहीं किंतु ईरानियों के नए वर्ष के दिन अर्थात् फरवरदीन के प्रारंभ से मान लिया गया और उसी दिन सन् जुलूस का उत्सव होता रहा। अकबर बादशाह का देहांत विक्रम संवत् १६६२ कार्तिक सुदि १४ (११[१] जमादि-उस्सानी १०१४ = १५ अक्टोबर ई० स० १६०५) मंगलवार को १४ घड़ी रात गए आगरे में हुआ।

---

(१) बादशाह अकबर के जन्म दिन में जैसे विवाद है, वैसे ही उसकी मृत्यु की तारीख

सन् क्रम	इलाही सन् मास और तारीख	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
१	१ फरवरदीन सन् १	२८ रबि उस्सानी सन ९६३	चैत्र बदि ऽऽ सं० १६१२	११ मार्च सन् १५५६
२	१ " " २	९ जमादिउल् अ०" ९६४	चैत्र सुदि ११ " १६१४[2]	११ " " १५५७
३	१ " " ३	२० " " ९६५	चैत्र बदि ७ " १६१४	११ " " १५५८
४	१ " " ४	२ जमादिउस्सानी " ९६६	चैत्र सुदि ३ " १६१६[3]	१२ " " १५५९
५	१ " " ५	१३ " " ९६७	फाल्गुन सुदि १४ " १६१६	११ " " १५६०
६	१ " " ६	२४ " " ९६८	चैत्र बदि ११ " १६१७	११ " " १५६१
७	१ " " ७	५ रजब " ९६९	चैत्र सुदि ६ " १६१९[4]	११ " " १५६२
८	१ " " ८	१५ " " ९७०	चैत्र बदि १ " १६१९	११ " " १५६३

में भी विवाद है, तुजुक जहाँगीरी में कहीं तारीख २० जमादि-उस्सानी को, तो कहीं ८ जमादि-उस्सानी को जहाँगीर का गद्दी-नशीन होना लिखा है, जो ठीक नहीं है। चंडवानी ज्योतिषियों के पंचाग की टिप्पणी में वि० सं० १६६२ कार्तिक सुदी १४ मंगलवार की रात को अकबर बादशाह का देहांत होना लिखा है जो ठीक प्रतीत होता है। (२) इस वर्ष में ज्येष्ठ अधिक था। (३) इसमें आश्विन अधिक था। (४) इसमें श्रावण अधिक था।

सन् जलूस	इलाही सन् मास और तारीख	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
९	१ फरवरदीन सन् ९	२७ रजब सन् ९७१	चैत्र बदि १४ संवत् १६२०	११ मार्च सन् १५६४
१०	१ " " १०	८ शाबान " ९७२	चैत्र सुदि १० " १६२२[५]	११ " " १५६५
११	१ " " ११	१८ " " ९७३	चैत्र बदि ५ " १६२२	११ " " १५६६
१२	१ " " १२	२९ " " ९७४	चैत्र सुदि १ " १६२४	११ " " १५६७
१३	१ " " १३	११ रमजान " ९७५	चैत्र सुदि १३ " १६२५[६]	११ " " १५६८
१४	१ " " १४	२२ " " ९७६	चैत्र बदि ९ " १६२५	११ " " १५६९
१५	१ " " १५	३ शव्वाल " ९७७	चैत्र सुदि ५ " १६२७[७]	११ " " १५७०
१६	१ " " १६	१४ " " ९७८	फाल्गुन सुदि १५ " १६२७	११ " " १५७१
१७	१ " " १७	२५ " " ९७९	चैत्र बदि ११ " १६२८	११ " " १५७२
१८	१ " " १८	६ जिल्काद " ९८०	चैत्र सुदि ८ " १६३०[८]	११ " " १५७३

(५) इसमें आषाढ़ अधिक था। (६) इसमें वैशाख अधिक था। (७) इसमें भाद्रपद अधिक था। (८) इसमें आषाढ़ अधिक था।

सन् जुलूस	इलाही सन् मास और तारीख	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
१९	१ फरवरदीन सन् १९	१७ ज़िल्काद सन् ९८१	चैत्र बदि ४ संवत् १६३०	११ मार्च सन् १५७४
२०	१ " " २०	२७ " " ९८२	चैत्र बदि १४ " १६३१	११ " " १५७५
२१	१ " " २१	५ ज़िलहिज्ज " ९८३	चैत्र सुदि ११ " १६३२[९]	११ " " १५७६
२२	१ " " २२	२० " " ९८४	चैत्र बदि ८ " १६३३	११ " " १५७७
२३	१ " " २३	१ मुहर्रम " ९८६	चैत्र सुदि ३ " १६३५[१०]	११ " " १५७८
२४	१ " " २४	१२ " " ९८७	फाल्गुन सुदि १३ " १६३५	११ " " १५७९
२५	१ " " २५	२४ " " ९८८	चैत्र बदि ११ " १६३६	११ " " १५८०
२६	१ " " २६	५ सफ़र " ९८९	चैत्र सुदि ७ " १६३८[११]	११ " " १५८१
२७	१ " " २७	१५ " " ९९०	चैत्र बदि २ " १६३८	११ " " १५८२

(९) इसमें ज्येष्ठ अधिक था। (१०) इसमें आश्विन अधिक था। (११) इसमें श्रावण अधिक था।

जुलूस सन्	इलाही सन् मास और तारीख	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
२८	१ फरवरदीन सन् २८	२६ सफर सन् ९९१	चैत्र बदि १३ संवत् १६३९	११ मार्च सन् १५८३
२९	१ " " २९	८ रबिउल् अव्वल " ९९२	चैत्र सुदि १० " १६४१[12]	११ " " १५८४
३०	१ " " ३०	१८ " " ९९३	चैत्र बदि ६ " १६४१	११ " " १५८५
३१	१ " " ३१	२९ " " ९९४	चैत्र सुदि १ " १६४३	११ " " १५८६
३२	१ " " ३२	११ रबिउस्सानी " ९९५	चैत्र सुदि १२ " १६४४[13]	११ " " १५८७
३३	१ " " ३३	२२ " " ९९६	चैत्र बदि ८ " १६४४	१० " " १५८८
३४	१ " " ३४	४ जमादिउल् अ० " ९९७	चैत्र सुदि ५ " १६४६[14]	११ " " १५८९
३५	१ " " ३५	१४ " " ९९८	फाल्गुन सुदि १५ " १६४६	११ " " १५९०
३६	१ " " ३६	२४ " " ९९९	चैत्र बदि ११ " १६४७	११ " " १५९१

(१२) इसमें आषाढ़ अधिक था। (१३) इसमें वैशाख अधिक था। (१४) इसमें भाद्रपद अधिक था।

जुलूसी सन्	इलाही सन् मास और तारीख	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
३७	१ फरवरदीन सन् ३७	५ जमादिउस्सानी सन् १०००	चैत्र सुदि ७ संवत् १६४९[15]	१० मार्च सन् १५९२
३८	१ " " ३८	१७ " " १००१	चैत्र वदि ४ " १६४९	११ " " १५९३
३९	१ " " ३९	२८ " " १००२	चैत्र वदि ऽऽ " १६५०	११ " " १५९४
४०	१ " " ४०	९ रजब " १००३	चैत्र सुदि १० " १६५२[16]	११ " " १५९५
४१	१ " " ४१	२० " " १००४	चैत्र वदि ७ " १६५२	१० " " १५९६
४२	१ " " ४२	२ शाबान " १००५	चैत्र सुदि ४ " १६५४[17]	११ " " १५९७
४३	१ " " ४३	१३ " " १००६	फाल्गुन सुदि १४ " १६५४	११ " " १५९८
४४	१ " " ४४	२३ " " १००७	चैत्र वदि १० " १६५५	११ " " १५९९
४५	१ " " ४५	४ रमज़ान " १००८	चैत्र सुदि ६ " १६५७[18]	१० " " १६००

(१५) इसमें आषाढ़ अधिक था। (१६) इसमें ज्येष्ठ अधिक था। (१७) इसमें आश्विन अधिक था। (१८) इसमें श्रावण अधिक था।

सन् जुलूस	इलाही सन् मास और तारीख	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
४६	१ फरवरदीन सन् ४६	१४ रमज़ान सन् १००९	चैत्र बदि २ सं० १६५७	१० मार्च सन् १६०१
४७	१ " " ४७	२६ " " १०१०	चैत्र बदि १३ " १६५८	११ " " १६०२
४८	१ " " ४८	७ शव्वाल " १०११	चैत्र सुदि ९ " १६६०[१६]	११ " " १६०३
४९	१ " " ४९	१८ " " १०१२	चैत्र वदि ५ " १६६०	१० " " १६०४
५०	१ " " ५०	२९ " " १०१३	चैत्र सुदि १ " १६६२	१० " " १६०५

(१६) इसमें आषाढ़ अधिक था।

जहाँगीर

नूरुद्दीन मुहम्मद जहाँगीर बादशाह अपने पिता अकबर के पीछे मुगल राज्य के सिंहासन पर बैठा। वह भी अपने पिता की नाईं अपने जुलूस (राज्यवर्ष) का उत्सव तारीख १ फरवरदीन को मनाता रहा, न कि अपनी गद्दी-नशीनी की तारीख से। जहाँगीर का देहांत हि० सन् १०३७ ता० २८ सफर (वि० सं० १६८४ कार्तिक बदि ऽऽ=ई० स० १६२७ ता० २८ अक्टोबर) को कश्मीर से लाहौर जाते हुए हुआ था।

जुलूसी सन्	इलाही सन् मास और तारीख	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
१	१ फरवरदीन सन् ५१	११ ज़िल्काद सन् १०१४	प्र० चैत्र सुदि १२ सं० १६६३[1]	११ मार्च सन् १६०६
२	१ „ „ ५२	२२ „ „ १०१५	चैत्र बदि ८ „ १६६३	११ „ „ १६०७
३	१ „ „ ५३	२ ज़िलहिज्ज „ १०१६	चैत्र सुदि ५ „ १६६५	१० „ „ १६०८
४	१ „ „ ५४	१३ „ „ १०१७	फाल्गुन सुदि १५ „ १६६५	१० „ „ १६०९

(१) इस वर्ष में चैत्र अधिक था। (२) इसमें भाद्रपद अधिक था।

सन् जुलूस	इलाही सन् मास और तारीख	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
५	१ फरवरदीन सन् ५५	२४ जिलहिज्ज सन् १०१८	चैत्र बदि १० सं० १६६६	११ मार्च सन् १६१०
६	१ ,, ,, ५६	५ मुहर्रम ,, १०२०	चैत्र सुदि ७ ,, १६६८[३]	११ ,, ,, १६११
७	१ ,, ,, ५७	१६ ,, ,, १०२१	चैत्र बदि ४ ,, १६६८	१० ,, ,, १६१२
८	१ ,, ,, ५८	२८ ,, ,, १०२२	चैत्र बदि ऽऽ ,, १६६९	११ ,, ,, १६१३
९	१ ,, ,, ५९	१० सफर ,, १०२३	चैत्र सुदि ११ ,, १६७१[४]	११ ,, ,, १६१४
१०	१ ,, ,, ६०	२० ,, ,, १०२४	चैत्र बदि ६ ,, १६७१	१० ,, ,, १६१५
११	१ ,, ,, ६१	२ रबिउल् अ० ,, १०२५	चैत्र सुदि ४ ,, १६७३[५]	११ ,, ,, १६१६
१२	१ ,, ,, ६२	१३ ,, ,, १०२६	फाल्गुन सुदि १४ ,, १६७३	११ ,, ,, १६१७
१३	१ ,, ,, ६३	२३ ,, ,, १०२७	चैत्र बदि १० ,, १६७४	११ ,, ,, १६१८

(३) इसमें आषाढ़ अधिक था। (४) इसमें ज्येष्ठ अधिक था। (५) इसमें आश्विन अधिक था।

सन् जुलूस	इलाही सन् मास और तारीख	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
१४	१ फरवरदीन सन् ६४	४ रबिउस्सानी सन् १०२८	चैत्र सुदि ६ सं० १६७६[६]	११ मार्च सन् १६१९
१५	१ ,, ,, ६५	१५ ,, ,, १०२९	चैत्र बदि २ ,, १६७६	१० ,, ,, १६२०
१६	१ ,, ,, ६६	२७ ,, ,, १०३०	चैत्र बदि १४ ,, १६७७	१२ ,, ,, १६२१
१७	१ ,, ,, ६७	८ जमादिउल्अ०,, १०३१	चैत्र सुदि ९ ,, १६७९[७]	११ ,, ,, १६२२
१८	१ ,, ,, ६८	१९ ,, ,, १०३२	चैत्र बदि ५ ,, १६७९	११ ,, ,, १६२३
१९	१ ,, ,, ६९	२९ ,, ,, १०३३	चैत्र सुदि १ ,, १६८१	१० ,, ,, १६२४
२०	१ ,, ,, ७०	१० जमादिउ० ,, १०३४	चैत्र सुदि १२ ,, १६८२[८]	१० ,, ,, १६२५
२१	१ ,, ,, ७१	२२ ,, ,, १०३५	चैत्र बदि ७ ,, १६८२	११ ,, ,, १६२६
२२	१ ,, ,, ७२	३ रजब ,, १०३६	चैत्र सुदि ४ ,, १६८४[९]	११ ,, ,, १६२७

(६) इसमें श्रावण अधिक था। (७) इसमें आषाढ़ अधिक था। (८) इसमें चैत्र अधिक था। (९) इसमें श्रावण अधिक था।

शाहजहाँ[1]

शहाबुद्दीन मुहम्मद साहिब किरॉसानी शाहजहाँ, बादशाह जहांगीर का तीसरा शाहजादा था और नूरजहाँ बेगम के भाई आसिफखाँ वजीर ने इसी को गद्दी पर बिठलाना चाहा। यह राजगद्दी मिलने की उम्मेद में अपने पिता की मृत्यु का समाचार सुनते ही दक्षिण से लाहौर को चला और तारीख ८ जमादिउस्सानी हि० स० १०३७ (वि० सं० १६८४ माघ सुदि १० = ई० स० १६२८ ता० ४ फरवरी) से राज्य का स्वामी बना और ता० १७ रमजान हि० स० १०६८ (वि० सं० १७१५ आषाढ़ बदि ४ = ई० स० १६५८ ता० ५ जून) को अपने शाहजादे औरंगजेब से कैद हो गया। ता० २६ रज्जब हि० स० १०७६ (वि० सं० १७२२ माघ बदि १३ = ई० स० १६६६ ता० २२ जनवरी) को कैद ही में इसका देहांत हुआ।

---

१ बादशाह अकबर ने इलाही सन् प्रचलित कर उसके प्रारंभ के दिन अर्थात् तारीख १ फरवरदीन से अपने सन् जुलूस (राज्यवर्ष) का उत्सव मनाना पीछे से प्रारंभ किया। बादशाह जहांगीर भी अपना सन् जुलूस उसी दिन मनाता था। शाहजहाँ बादशाह के समय से इलाही सन् के प्रारंभ के दिन जुलूस सन् का मनाना बंद हुआ और हिजरी सन् के हिसाब से मनाया जाने लगा। शाहजहाँ की गद्दी-नशीनी ता० ८ जमादिउस्सानी को हुई थी; परन्तु पीछे से जुलूस १ जमादिउस्सानी से मनाया जाने लगा।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख				विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि			ईसवी सन् मास और तारीख			
१	१	जमादिउस्सानी	सन्	१०३७	माघ सुदि २	संवत्	१६८४	२८	जनवरी	सन्	१६२८
२	१	,,	,,	१०३८	माघ सुदि ३	,,	१६८५	१७	,,	,,	१६२९
३	१	,,	,,	१०३९	माघ सुदि ३	,,	१६८६	६	,,	,,	१६३०
४	१	,,	,,	१०४०	पौष सुदि ३	,,	१६८७[२]	२६	दिसंबर	,,	१६३०
५	१	,,	,,	१०४१	पौष सुदि ३	,,	१६८८	२५	,,	,,	१६३१
६	१	,,	,,	१०४२	पौष सुदि ३	,,	१६८९	४	,,	,,	१६३२
७	१	,,	,,	१०४३	मार्गशीर्ष सुदि २	,,	१६९०[३]	२३	नवंबर	,,	१६३३
८	१	,,	,,	१०४४	मार्गशीर्ष सुदि ३	,,	१६९१	१३	,,	,,	१६३४
९	१	,,	,,	१०४५	कार्तिक सुदि ३	,,	१६९२[४]	२	,,	,,	१६३५

(२) इस वर्ष में आषाढ़ अधिक था। (३) इसमें वैशाख अधिक था। (४) इसमें भाद्रपद अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख			विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि			ईसवी सन् मास और तारीख		
१०	१ जमादिउस्सानी	सन्	१०४६	कार्तिक सुदि २	संवत्	१६९३	२१ अक्तूबर	सन्	१६३६
११	१ ,,	,,	१०४७	कार्तिक सुदि ३	,,	१६९४	१० ,,	,,	१६३७
१२	१ ,,	,,	१०४८	आश्विन सुदि २	,,	१६९५[५]	२९ सितंबर	,,	१६३८
१३	१ ,,	,,	१०४९	आश्विन सुदि ३	,,	१६९६	१९ ,,	,,	१६३९
१४	१ ,,	,,	१०५०	आश्विन सुदि २	,,	१६९७	८ ,,	,,	१६४०
१५	१ ,,	,,	१०५१	भाद्रपद सुदि २	,,	१६९८[६]	२८ अगस्त	,,	१६४१
१६	१ ,,	,,	१०५२	भाद्रपद सुदि ३	,,	१६९९	१८ ,,	,,	१६४२
१७	१ ,,	,,	१०५३	भाद्रपद सुदि ३	,,	१७००	७ ,,	,,	१६४३
१८	१ ,,	,,	१०५४	श्रावण सुदि ३	,,	१७०१[७]	२६ जुलाई	,,	१६४४

(५) इसमें श्रावण अधिक था। (६) इसमें ज्येष्ठ अधिक था। (७) इसमें चैत्र अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
१९	१ जमादिउस्सानी सन् १०५५	श्रावण सुदि ३ संवत् १७०२	१५ जूलाई सन् १६४५
२०	१ ,, ,, १०५६	प्रथम श्रावण सुदि ३ ,, १७०३[8]	५ ,, ,, १६४६
२१	१ ,, ,, १०५७	आषाढ़ सुदि २ ,, १७०४	२४ जून ,, १६४७
२२	१ ,, ,, १०५८	आषाढ़ सुदि ३ ,, १७०५	१३ ,, ,, १६४८
२३	१ ,, ,, १०५९	प्रथम आषाढ़ सुदि २ सं० १७०६[9]	२ ,, ,, १६४९
२४	१ ,, ,, १०६०	ज्येष्ठ सुदि ३ ,, १७०७	२३ मई ,, १६५०
२५	१ ,, ,, १०६१	ज्येष्ठ सुदि २ ,, १७०८	११ ,, ,, १६५१
२६	१ ,, ,, १०६२	द्वितीय वैशाख सुदि ३ ,, १७०९[10]	३० अप्रैल ,, १६५२
२७	१ ,, ,, १०६३	वैशाख सुदि २ ,, १७१०	१९ ,, ,, १६५३

(८) इसमें श्रावण अधिक था। (९) इसमें आषाढ़ अधिक था। (१०) इसमें वैशाख अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
२८	१ जमादिउस्सानी सन् १०६४	वैशाख सुदि ३ संवत् १७११[11]	९ अप्रैल सन् १६५४
२९	१ " " १०६५	चैत्र सुदि ३ " १७१२	३० मार्च " १६५५
३०	१ " " १०६६	चैत्र सुदि २ " १७१३	१८ " " १६५६
३१	१ " " १०६७	चैत्र सुदि २ " १७१४[12]	८ " " १६५७
३२	१ " " १०६८	फाल्गुन सुदि २ " १७१४	२४ फरवरी " १६५८

(११) इसमें भाद्रपद अधिक था। (१२) इसमें श्रावण अधिक था।

औरंगज़ेब (आलमगीर) ।

मुहिउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब आलमगीर अपने पिता को आगरे के किले में कैद कर देहली में पहुँचा और ता० १ जिल्काद सन् १०६८ हि० (श्रावण सुदि ३ वि० सं० १७१५ = ता० २३ जूलाई ई० स० १६५८) को मुगलिया-सल्तनत का स्वामी बना। फिर तारीख २४ रमजान हि० स० १०६९ (आषाढ़ बदि ११ वि० सं० १७१६ = ता० ५ जून ई० स० १६५९) को अर्थात् अपनी गद्दी-नशीनी से लगभग एक वर्ष पीछे बड़ा जल्सा कर ऊपर लिखे हुए खिताब उसने धारण किए और अपने नाम का खुतबा और सिक्का जारी किया। इसी को इसका दूसरा सन् जुलूस मानना चाहिए। इसके बाद ता० १ रमजान से जुलूस मनाया जाने लगा। इसका देहान्त तारीख २८ जिल्काद १११८ हि० स० (फाल्गुन बदि १४ वि० सं० १७६३ = ता० २१ फरवरी ई० स० १७०७) को अहमदनगर (दक्षिण) में हुआ।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
१	१ ज़िल्काद सन् १०६८	श्रावण सुदि ३ संवत् १७१५	२३ जूलाई सन् १६५८
२	२४ रमज़ान " १०६९	आषाढ़ बदि ११ " १७१६	५ जून " १६५९
३	१ " " १०७०	प्रथम ज्येष्ठ सुदि २ " १७१७[1]	१ मई " १६६०
४	१ " " १०७१	बैशाख सुदि २ " १७१८	२१ अप्रैल " १६६१
५	१ " " १०७२	बैशाख सुदि ३ " १७१९	१० " " १६६२
६	१ " " १०७३	द्वितीय चैत्र सुदि ३ " १७२०[2]	३१ मार्च " १६६३
७	१ " " १०७४	चैत्र सुदि ३ " १७२१	२० " " १६६४
८	१ " " १०७५	चैत्र सुदि ३ " १७२२[3]	९ " " १६६५
९	१ " " १०७६	फाल्गुन सुदि २ " १७२२	२६ फरवरी " १६६६

(१) इस वर्ष में ज्येष्ठ अधिक था। (२) इसमें चैत्र अधिक था। (३) इसमें श्रावण अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख			विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि			ईसवी सन् मास और तारीख		
१०	१ रमज़ान	सन्	१०७७	फाल्गुन सुदि ३	संवत्	१७२३	१५ फ़रवरी	सन्	१६६७
११	१ "	"	१०७८	फाल्गुन सुदि २	"	१७२४	४ "	"	१६६८
१२	१ "	"	१०७९	माघ सुदि २	"	१७२५[४]	२४ जनवरी	"	१६६९
१३	१ "	"	१०८०	माघ सुदि २	"	१७२६	१३ "	"	१६७०
१४	१ "	"	१०८१	माघ सुदि ३	"	१७२७	३ "	"	१६७१
१५	१ "	"	१०८२	पौष सुदि २	"	१७२८[५]	२३ दिसंबर	"	१६७१
१६	१ "	"	१०८३	पौष सुदि २	"	१७२९	११ "	"	१६७२
१७	१ "	"	१०८४	मार्गशीर्ष सुदि २	"	१७३०[६]	३० "	"	१६७३
१८	१ "	"	१०८५	मार्गशीर्ष सुदि ३	"	१७३१	२० "	"	१६७४

(४) इसमें आषाढ़ अधिक था। (५) इसमें वैशाख अधिक था। (६) इसमें भाद्रपद अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख			विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि			ईसवी सन् मास और तारीख		
१९	१ रमजान	सन्	१०८६	मार्गशीर्ष सुदि ३	संवत्	१७३२	९ नवंबर	सन्	१६७५
२०	१ "	"	१०८७	कार्तिक सुदि ३	"	१७३३[७]	२९ अक्तूबर	"	१६७६
२१	१ "	"	१०८८	कार्तिक सुदि २	"	१७३४	१८ "	"	१६७७
२२	१ "	"	१०८९	कार्तिक सुदि ३	"	१७३५	८ "	"	१६७८
२३	१ "	"	१०९०	आश्विन सुदि ३	"	१७३६[८]	२७ सितंबर	"	१६७९
२४	१ "	"	१०९१	आश्विन सुदि ३	"	१७३७	१५ "	"	१६८०
२५	१ "	"	१०९२	प्रथम भाद्रपद सुदि ३	"	१७३८[९]	४ "	"	१६८१
२६	१ "	"	१०९३	भाद्रपद सुदि ३	"	१७३९[१०]	२५ "	"	१६८२
२७	१ "	"	१०९४	भाद्रपद सुदि २	"	१७४०	१४ "	"	१६८३

(७) इसमें श्रावण अधिक था। (८) इसमें ज्येष्ठ अधिक था। (९) इसमें आश्विन अधिक और मार्गशीर्ष क्षय था। (१०) इसमें चैत्र अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख			विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि			ईसवी सन् मास और तारीख		
२८	१ रमजान	सन्	१०९५	द्वितीय श्रावण सुदि २	सं०	१७४१[११]	२ अगस्त	सन्	१६८४
२९	१ "	"	१०९६	श्रावण सुदि ३	"	१७४२	२४ जुलाई	"	१६८५
३०	१ "	"	१०९७	श्रावण सुदि ३	"	१७४३	१३ "	"	१६८६
३१	१ "	"	१०९८	द्वितीय आषाढ़ सुदि २	"	१७४४[१२]	२ "	"	१६८७
३२	१ "	"	१०९९	आषाढ़ सुदि २	"	१७४५	१९ जून	"	१६८८
३३	१ "	"	११००	आषाढ़ सुदि ३	"	१७४६	१० "	"	१६८९
३४	१ "	"	११०१	ज्येष्ठ सुदि ३	"	१७४७[१३]	३० मई	"	१६९०
३५	१ "	"	११०२	ज्येष्ठ सुदि ३	"	१७४८	२० "	"	१६९१
३६	१ "	"	११०३	ज्येष्ठ सुदि २	"	१७४९[१४]	८ "	"	१६९२

(११) इसमें श्रावण अधिक था। (१२) इसमें आषाढ़ अधिक था। (१३) इसमें वैशाख अधिक था। (१४) इसमें भाद्रपद अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
३७	१ रमजान सन् ११०४	वैशाख सुदि २ संवत् १७५०	२७ अप्रैल सन् १६९३
३८	१ " " ११०५	वैशाख सुदि २ " १७५१	१६ " " १६९४
३९	१ " " ११०६	वैशाख सुदि २ " १७५२[१५]	६ " " १६९५
४०	१ " " ११०७	चैत्र सुदि ३ " १७५३	२५ मार्च " १६९६
४१	१ " " ११०८	चैत्र सुदि ३ " १७५४	१५ " " १६९७
४२	१ " " ११०९	चैत्र सुदि २ " १७५५[१६]	३ " " १६९८
४३	१ " " १११०	फाल्गुन सुदि ३ " १७५५	२२ फरवरी " १६९९
४४	१ " " ११११	फाल्गुन सुदि २ " १७५६	११ " " १७००
४५	१ " " १११२	माघ सुदि ३ " १७५७[१७]	३० जनवरी " १७०१

(१५) इसमें आषाढ़ अधिक था। (१६) इसमें ज्येष्ठ अधिक था। (१७) इसमें आश्विन अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
४६	१ रमज़ान सन् ११११३	माघ सुदि २ संवत् १७५८	१९ जनवरी सन् १७०२
४७	१ ,, ,, १११४	माघ सुदि २ ,, १७५९	८ ,, ,, १७०३
४८	१ ,, ,, १११५	पौष सुदि ३ ,, १७६०[१८]	२९ दिसंबर ,, १७०३
४९	१ ,, ,, १११६	पौष सुदि ३ ,, १७६१	१८ ,, ,, १७०४
५०	१ ,, ,, १११७	पौष सुदि ३ ,, १७६२	७ ,, ,, १७०५
५१	१ ,, ,, १११८	मार्गशीर्ष सुदि २ ,, १७६३[१९]	२६ नवंबर ,, १७०६

(१८) इसमें श्रावण अधिक था। (१९) इसमें ज्येष्ठ अधिक था।

बहादुर शाह (शाह आलम)।

कुतबुद्दीन मुहम्मद शाह आलम बहादुर शाह, बादशाह औरंगजेब का दूसरा शाहजादा (मुअज्जम) था और अपने पिता की मृत्यु के समय काबुल में था। वहाँ अपने पिता के देहांत की खबर सुनते ही उसने अपने को बादशाह मान लिया; परंतु उसके छोटे भाई शाहजादा आज़म ने भी इधर अपने को बादशाह प्रसिद्ध कर दिया। इस पर दोनों भाइयों में धौलपुर और आगरे के बीच ता० १८ रबीउल् अव्वल हि० स० १११९ (आषाढ़ बदि ४ वि० सं० १७६४ ता० ८ जून ई० स० १७०७) को बड़ी लड़ाई हुई जिसमें शाहजादा आजम मारा गया और बहादुर शाह ने अपना दूसरा जुलूस ता० १ जिलहिज्ज हि० स० १११९ (फाल्गुन सुदि २ वि० सं० १७६४ = ता० १२ फरवरी ई० स० १७०८) को मनाया। इसका देहांत ता० २१ मुहर्रम हि० स० ११२४ (फाल्गुन बदि ७ वि० सं० १७६८ = ता० १८ फरवरी ई० सं० १७२२) को हुआ।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख				विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि			ईसवी सन् मास और तारीख			
१	१	ज़िलहिज्ज	सन्	१११८	फाल्गुन सुदि ३	संवत्	१७६३	२३	फरवरी	सन्	१७०७
२	१	,,	,,	१११९	फाल्गुन सुदि २	,,	१७६४	१२	,,	,,	१७०८
३	१	,,	,,	११२०	फाल्गुन सुदि ३	,,	१७६५	१	,,	,,	१७०९
४	१	,,	,,	११२१	माघ सुदि २	,,	१७६६[1]	२१	जनवरी	,,	१७१०
५	१	,,	,,	११२२	माघ सुदि २	,,	१७६७	१०	,,	,,	१७११
६	१	,,	,,	११२३	पौष सुदि २	,,	१७६८[2]	३०	दिसंबर	,,	१७११

(१) इसमें वैशाख अधिक था। (२) इसमें आषाढ़ अधिक था।

जहाँदार शाह ।

मुहम्मद मुइज़ुद्दीन जहाँदार शाह बादशाह अपने पिता की मृत्यु के पीछे अपने भाइयों से लड़ता रहा और उनको नष्ट कर ता० १४ रबिउल् अव्वल हि० स० ११२४ (चैत्र सुदि १५ वि० सं० १७६९ = ता० १० अप्रैल ई० स० १७१२) को लाहौर में गद्दी-नशीन हुआ और अनुमान ९ महीने बाद आगरे के पास की लड़ाई में कैद होकर अपने भतीजे फर्रुखसियर की आज्ञा से जिलहिज्ज हि० स० ११२४ (वि० सं० १७६९ = ई० स० १७१३) में मार डाला गया ।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
१	१४ रबिउल् अव्वल ११२४	चैत्र सुदि १५ संवत् १७६९	१० अप्रैल सन् १७१२

फ़र्रुख़सियर ।

जहाँदार शाह को मरवाकर मुहम्मद फ़र्रुख़सियर, ता० २३ ज़िलहिज हि० स० ११२४ (माघ बदि १० वि० सं० १७६९ = ता० १० जनवरी ई० स० १७१३) को देहली में गद्दी-नशीन हुआ। यह अपना जुलूस ता० १ रबिउल् अव्वल से मनाता रहा। ता० ८ रबिउस्सानी हि० स० ११३१ (फाल्गुन सुदि ९ वि० सं० १७७५ = ता० १७ फरवरी ई० स० १७१९) को यह अंधा किया जाकर कैद किया गया और ता० ९ रजब हि० स० ११३१ (ज्येष्ठ सुदि ११ वि० सं० १७७६ = ता० १८ मई ई० स० १७१९) को मार डाला गया।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
१	१ रबिउल् अव्वल ११२५	चैत्र सुदि २ संवत् १७७०	१७ मार्च सन् १७१३
२	१ ” ” ११२६	चैत्र सुदि ३ ” १७७१[1]	७ ” ” १७१४
३	१ ” ” ११२७	फाल्गुन सुदि ३ ” १७७१	२५ फरवरी ” १७१५
४	१ ” ” ११२८	फाल्गुन सुदि ३ ” १७७२	१४ ” ” १७१६
५	१ ” ” ११२९	फाल्गुन सुदि २ ” १७७३	३ ” ” १७१७
६	१ ” ” ११३०	माघ सुदि ३ ” १७७४[2]	२३ जनवरी ” १७१८
७	१ ” ” ११३१	माघ सुदि ३ ” १७७५	१२ ” ” १७१९

(१) इस वर्ष में आषाढ़ अधिक था। (२) इस वर्ष में ज्येष्ठ अधिक था :

रफ़िउद्दरजात।

रफ़िउद्दरजात को, जो बादशाह शाहआलम का पोता और रफ़िउश्शान का बेटा था, सैयदों ने फ़र्रुख़सियर को क़ैद कर ता० ९ रबिउस्सानी हि० स० ११३१ (फाल्गुन सुदि १० वि० सं० १७७५ = ता० १८ फ़रवरी ई० स० १७१९) को तख़्त पर बैठाया; परंतु ३ महीने बाद ता० १९ रजब हि० स० ११३१ (आषाढ़ बदि ६ वि० सं० १७७६ = ता० २८ मई ई० स० १७१९ को इसका देहांत हो गया।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख़	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन मास और तारीख़
१	९ रबिउस्सानी सन् ११३१	फाल्गुन सुदि १० सं० १७७५	१८ फ़रवरी सन् १७१९

रफिउद्दौला।

रफिउद्दौला शाहजहाँ सानी को, जो रफिउद्दरजात का बड़ा भाई था, सैयदों ने रफिउद्दरजात के मरने पर ता० २० रज्जब हि० स० ११३१ (आषाढ़ बदि ७ वि० सं० १७७६ = ता० २९ मई ई० स० १७१९) को तख्त पर बैठाया, परंतु वह ता० ७ जिल्काद हि० स० ११३१ (प्रथम आश्विन सुदि ९ सं० १७७६ = ११ सितंबर ई० स० १७१९) को मर गया।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
१	२० रज्जब सन् ११३१	आषाढ़ बदि ७ सं० १७७६[1]	२९ मई सन् १७१९

(१) इस वर्ष में आश्विन अधिक था।

मुहम्मद शाह।

रफीउद्दौला के मरने पर सैयदों ने शाह आलम के पोते और खुजिस्ता अख्तर के बेटे नासिरुद्दीन मुहम्मद शाह को ता० १५ जिल्काद हि० स० ११३१ (द्वितीय आश्विन बदि २ वि० सं० १७७६ = ता० १९ सितंबर १७१९ ई० स०) को तख्त पर बैठाया। इसने अपने पहले के दो बादशाहों अर्थात् रफिउद्दरजात और रफिउद्दौला का बादशाह होना स्वीकार न कर अपने को फर्रुखसियर का उत्तराधिकारी माना और अपने जुलूस का दिन वही रक्खा जिस दिन फर्रुखसियर गद्दी से उतारा जाकर रफिउद्दरजात गद्दी पर बैठाया गया था। इसका देहांत ता० २७ रबिउस्सानी हि० स० ११६१ (वैशाख बदि ३० वि० सं० १८०५ = १६ अप्रैल ई० स० १७४८) को हुआ।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
१	९ रबिउस्सानी सन् ११३१	फाल्गुन सुदि १० संवत् १७७५	१८ फरवरी सन् १७१९
२	९ ,, ,, ११३२	माघ सुदि ११ ,, १७७६	८ ,, ,, १७२०
३	९ ,, ,, ११३३	माघ सुदि ११ ,, १७७७	२७ जनवरी ,, १७२१
४	९ ,, ,, ११३४	माघ सुदि ११ ,, १७७८	१६ ,, ,, १७२२
५	९ ,, ,, ११३५	पौष सुदि ११ ,, १७७९[1]	६ ,, ,, १७२३
६	९ ,, ,, ११३६	पौष सुदि १२ ,, १७८०	२७ दिसंबर ,, १७२३
७	९ ,, ,, ११३७	पौष सुदि १० ,, १७८१	१४ ,, ,, १७२४
८	९ ,, ,, ११३८	मार्गशीर्ष सुदि ११ ,, १७८२[2]	४ ,, ,, १७२५
९	९ ,, ,, ११३९	मार्गशीर्ष सुदि १० ,, १७८३	२३ नवंबर ,, १७२६

(१) इस वर्ष में श्रावण अधिक था। (२) इसमें आषाढ़ अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख			विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि			ईसवी सन् मास और तारीख		
१०	९ रबिउस्सानी	सन्	११४०	मार्गशीर्ष सुदि १०	संवत्	१७८४	१२ नवंबर	सन्	१७२७
११	९ ,,	,,	११४१	कार्तिक सुदि ११	,,	१७८५[3]	१ ,,	,,	१७२८
१२	९ ,,	,,	११४२	कार्तिक सुदि ११	,,	१७८६	२२ अक्तूबर	,,	१७२९
१३	९ ,,	,,	११४३	आश्विन सुदि ११।१२	,,	१७८७[4]	११ ,,	,,	१७३०
१४	९ ,,	,,	११४४	आश्विन सुदि ११	,,	१७८८	३० सितंबर	,,	१७३१
१५	९ ,,	,,	११४५	आश्विन सुदि १०	,,	१७८९	१८ ,,	,,	१७३२
१६	९ ,,	,,	११४६	भाद्रपद सुदि १०	,,	१७९०[5]	७ ,,	,,	१७३३
१७	९ ,,	,,	११४७	भाद्रपद सुदि १०	,,	१७९१	२८ अगस्त	,,	१७३४
१८	९ ,,	,,	११४८	भाद्रपद सुदि ११	,,	१७९२	१७ ,,	,,	१७३५

(३) इसमें वैशाख अधिक था। (४) इसमें भाद्रपद अधिक था। (५) इसमें आषाढ़ अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख			विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि			ईसवी सन् मास और तारीख		
१९	९ रबिउस्सानी	सन्	११४९	श्रावण सुदि ११	संवत्	१७९३[6]	६ अगस्त	सन्	१७३६
२०	९ ,,	,,	११५०	श्रावण सुदि ११	,,	१७९४	२६ जुलाई	,,	१७३७
२१	९ ,,	,,	११५१	श्रावण सुदि ११	,,	१७९५[7]	१६ ,,	,,	१७३८
२२	९ ,,	,,	११५२	आषाढ़ सुदि १०	,,	१७९६	५ ,,	,,	१७३९
२३	९ ,,	,,	११५३	आषाढ़ सुदि १०	,,	१७९७	२३ जून	,,	१७४०
२४	९ ,,	,,	११५४	आषाढ़ सुदि १०	,,	१७९८[8]	१२ ,,	,,	१७४१
२५	९ ,,	,,	११५५	ज्येष्ठ सुदि ११	,,	१७९९	२ ,,	,,	१७४२
२६	९ ,,	,,	११५६	ज्येष्ठ सुदि ११	,,	१८००	२३ मई	,,	१७४३
२७	९ ,,	,,	११५७	ज्येष्ठ सुदि ११	,,	१८०१[9]	११ ,,	,,	१७४४

(६) इसमें ज्येष्ठ अधिक था। (७) इसमें आश्विन अधिक था। (८) इसमें श्रावण अधिक था। (९) इसमें आषाढ़ अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
२८	९ रबिउस्सानी सन् ११५८	वैशाख सुदि ११ संवत् १८०२	१ मई सन् १७४५
२९	९ ,, ,, ११५९	वैशाख सुदि ११ ,, १८०३	२० अप्रैल ,, १७४६
३०	९ ,, ,, ११६०	द्वितीय चैत्र सुदि १०,, १८०४[१०]	९ ,, ,, १७४७
३१	९ ,, ,, ११६१	चैत्र सुदि १० ,, १८०५	२८ मार्च ,, १७४८

(१०) इसमें चैत्र अधिक था।

अहमदशाह।

अहमद शाह अपने पिता मुहम्मदशाह की मृत्यु के समय पानीपत में था और वहीं उसका समाचार पाने पर ता० २ जमादिउल् अव्वल हि० स० ११६१ (वैशाख सुदि ४ वि० सं० १८०५ = ता० २० अप्रैल ई० स० १७४८) को गद्दी-नशीन हुआ और उसने अपना जुलूस ता० १ जमादिउल् अव्वल से मनाना शुरू किया। इसके सातवें राज्य-वर्ष में ता० १० शाबान हि० स० ११६७ (ज्येष्ठ सुदि १२ वि० सं० १८११ = ता० २ जून ई० स० १७५४) को इसके वजीर इमादुलमुल्क ने इसे कैद कर अंधा कर दिया और बादशाह जहाँदार शाह के छोटे बेटे अजीजुद्दीन (आलमगीर दूसरे) को गद्दी पर बैठाया। अहमद शाह का देहांत ता० २७ शव्वाल हि० स० ११८८ (पौष वदि ३० वि० सं० १८३१ = ता० १ जनवरी ई० स० १७७५) को हुआ।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख			विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि			ईसवी सन् मास और तारीख		
१	१ जमादिउल् अव्वल		११६१	वैशाख सुदि २	संवत्	१८०५	१९ अप्रैल	सन्	१७४८
२	१ ”	”	११६२	वैशाख सुदि ३	”	१८०६[1]	८ ”	”	१७४९
३	१ ”	”	११६३	चैत्र सुदि २	”	१८०७	२८ मार्च	”	१७५०
४	१ ”	”	११६४	चैत्र सुदि ३	”	१८०८	१८ ”	”	१७५१
५	१ ”	”	११६५	चैत्र सुदि ३	”	१८०९[2]	७ ”	”	१७५२[3]
६	१ ”	”	११६६	फाल्गुन सुदि २	”	१८०९	७ ”	”	१७५३
७	१ ”	”	११६७	फाल्गुन सुदि २	”	१८१०	२४ फरवरी	”	१७५४

(१) इस वर्ष में भाद्रपद अधिक था। (२) इसमें आषाढ़ अधिक था। (३) जूलियस सीज़र ने सौर वर्ष को ३६५¼ दिन का स्थिर किया जो वास्तविक सौर वर्ष से ११ मिनट १४ सेकंड बड़ा था। इससे करीब १२८ वर्ष में १ दिन का अंतर पड़ने लगा। यह अंतर बढ़ते बढ़ते ई० स० १५८२ में १० दिन का हो गया। पोप ग्रेगरी ने सूर्य के चार में इतना अंतर पड़ता हुआ देखकर ता० २२ फरवरी ई० स० १५८२ को यह आज्ञा दी कि इस वर्ष के अक्तूबर

आलमगीर दूसरा ।

मुहम्मद आलमगीर सानी ता० १० शाबान हि० स० ११६७ (ज्येष्ठ सुदि १२, वि० सं० १८११ = ता० २ जून ई० स० १७५४) को गद्दी-नशीन हुआ और उसी तारीख को प्रति वर्ष अपना सन जुलूस मनाता रहा । ता० ८ रबि-उस्सानी हि० स० ११७३ (मार्गशीर्ष सुदि १० वि० सं० १८१६ = ता० २९ नवंबर ई० स० १७५९) को इमादुलमुल्क के आदमियों के हाथ से वह मारा जाकर नदी में डाल दिया गया । फिर इमादुलमुल्क ने औरंगजेब के पोते और कामबख्श के बेटे मुहियुस्सुन्नत को तख्त पर बैठाकर उसका नाम शाहजहाँसानी रक्खा ।

मास की ४ तारीख के बाद का दिन १५ अक्तूबर माना जाय । इससे लौकिक सौर वर्ष वास्तविक सौर वर्ष से मिल गया । पोप ग्रेगरी की आज्ञा के अनुसार रोमन कैथोलिक संप्रदाय के अनुयायी देशों में तो तारीख ५ अक्तूबर के स्थान में १५ अक्तूबर तारीख मान ली गई, परंतु प्रोटेस्टेंट संप्रदाय के अनुयायी देशवालों प्रारंभ में इसका विरोध किया तो भी अंत में उनको लाचार स्वीकार करना पड़ा । इंग्लैंड में ई० स० १७५२ में इसका प्रचार हुआ, परन्तु उस समय तक एक दिन का और अंतर पड़ गया था इसलिये ता० २ सितंबर के बाद की तारीख ३ को १४ सितंबर मानना पड़ा । इसी से इठे जलूस के प्रारंभ की ई. स. तारीख में अंतर नहीं पड़ा जैसे कि पहले १०—११ दिन का पड़ता था । हमने इंगलैंड की गणना के अनुसार यहाँ पर इस अंतर को निकाला है न कि ई० स० १५८२ से । जो लोग ई० स० १५८२ से इस अंतर को निकालना चाहें, वे ई० स० १५८२ से १७५१ तक के वर्षों में १० दिन और जोड़ दें तो सन् के हिसाब से भी अंतर ठीक हो जायगा ।

सन जुलूस	हिजरी सन मास और तारीख		विक्रम संवत मास, पक्ष और तिथि		ईसवी सन मास और तारीख	
१	१० शाबान	सन ११६७	ज्येष्ठ सुदि १२	संवत १८११	२ जून	सन १७५४
२	१० "	" ११६८	प्रथम ज्येष्ठ सुदि १३	" १८१२[१]	२३ मई	" १७५५
३	१० "	" ११६९	वैशाख सुदि ११	" १८१३	१० "	" १७५६
४	१० "	" ११७०	वैशाख सुदि १०	" १८१४[२]	२९ अप्रैल	" १७५७
५	१० "	" ११७१	चैत्र सुदि ११	" १८१५	१९ "	" १७५८
६	१० "	" ११७२	चैत्र सुदि १२	" १८१६	९ "	" १७५९

(१) इस वर्ष में ज्येष्ठ अधिक था। (२) इसमें आश्विन अधिक था।

शाहजहाँ दूसरा।

इमादुलमुल्क ने मुहियुस्सुन्नत को ता० ८ रबिउस्सानी हि० स० ११७३ (मार्गशीर्ष सुदि १० वि० सं० १८१६ = ता० २९ नवंबर ई० स० १७५९) को गद्दी पर बैठाया और उसका नाम शाहजहाँ दूसरा रक्खा। थोड़े ही समय बाद मरहठों ने देहली को लूटकर ता० २९ सफर हि० स० ११७४ को आलमगीर दूसरे के पोते और अलीगौहर के बेटे मिर्ज़ा जवाँबख़्त को दिल्ली के तख़्त पर बैठाया, क्योंकि उसका पिता उस समय बंगाल में था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख़	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख़
१	ता० ८ रबिउस्सानी सन् ११७३	मार्गशीर्ष सुदि १० संवत् १८१६	२९ नवंबर सन् १७५९

शाह आलम दूसरा ।

आलमगीर दूसरे के शाहज़ादे अलीगौहर को इमादुल् मुल्क से कैद होने का भय था जिससे वह भागकर बंगाल चला गया । अपने पिता के मारे जाने की खबर इसको बिहार में मिली । ता० ४ जमादिउल् अव्वल हि० स० ११७३ (पौष सुदि ६ वि० सं० १८१६ = ता० २५ दिसंबर ई० स० १७५९) को यह बादशाह बना और इसने शाह आलम दूसरा यह खिताब धारण किया । इसका देहांत ता० ७ रमज़ान हि० स० १२२१ (कार्तिक सुदी ९ वि० सं० १८६३ = ता० १९ नवंबर ई० स० १८०६) को हुआ । यह नाम मात्र का ही बादशाह रहा और राज्यसत्ता वास्तव में मरहठों (सेंधिआ) के हाथ में थी ।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
१	४ जमादिउल् अ० सन् ११७३	पौष सुदि ६ संवत् १८१६	२५ दिसंबर सन् १७५९
२	४ ,, ,, ११७४	मार्गशीर्ष सुदि ६ ,, १८१७[1]	१३ ,, ,, १७६०
३	४ ,, ,, ११७५	मार्गशीर्ष सुदि ६ ,, १८१८	२ ,, ,, १७६१
४	४ ,, ,, ११७६	मार्गशीर्ष सुदि ६ ,, १८१९	२१ नवंबर ,, १७६२
५	४ ,, ,, ११७७	कार्तिक सुदि ५ ,, १८२०[2]	१० ,, ,, १७६३
६	४ ,, ,, ११७८	कार्तिक सुदि ६ ,, १८२१	३० अक्तूबर ,, १७६४
७	४ ,, ,, ११७९	कार्तिक सुदि ६ ,, १८२२	१९ ,, ,, १७६५
८	४ ,, ,, ११८०	आश्विन सुदि ६ ,, १८२३[3]	९ ,, ,, १७६६
९	४ ,, ,, ११८१	आश्विन सुदि ६ ,, १८२४	२८ सितंबर ,, १७६७

(१) इस वर्ष में श्रावण अधिक था। (२) इसमें ज्येष्ठ अधिक था। (३) इसमें चैत्र अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख़	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख़
१०	४ जमादिउल् अ० सन् ११८२	भाद्रपद सुदि ५ संवत् १८२५[४]	१६ सितंबर सन् १७६८
११	४ ,, ,, ११८३	भाद्रपद सुदि ५ ,, १८२६	५ ,, ,, १७६९
१२	४ ,, ,, ११८४	भाद्रपद सुदि ६ ,, १८२७	२६ अगस्त ,, १७७०
१३	४ ,, ,, ११८५	श्रावण सुदि ६।७ ,, १८२८[५]	१६ ,, ,, १७७१
१४	४ ,, ,, ११८६	श्रावण सुदि ६ ,, १८२९	४ ,, ,, १७७२
१५	४ ,, ,, ११८७	श्रावण सुदि ६ ,, १८३०	२५ जुलाई ,, १७७३
१६	४ ,, ,, ११८८	आषाढ़ सुदि ५ ,, १८३१[६]	१४ ,, ,, १७७४
१७	४ ,, ,, ११८९	आषाढ़ सुदि ५ ,, १८३२	३ ,, ,, १७७५
१८	४ ,, ,, ११९०	आषाढ़ सुदि ५ ,, १८३३[७]	२१ जून ,, १७७६

(४) इसमें श्रावण अधिक था। (५) इसमें आषाढ़ अधिक था। (६) इसमें वैशाख अधिक था। (७) इसमें भाद्रपद अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख				विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि			ईसवी सन् मास और तारीख			
१९	४	जमादिउल् अ०	सन्	११९१	ज्येष्ठ सुदि ६	संवत्	१८३४	११	जून	सन्	१७७७
२०	४	,,	,,	११९२	ज्येष्ठ सुदि ६	,,	१८३५	३१	मई	,,	१७७८
२१	४	,,	,,	११९३	ज्येष्ठ सुदि ६	,,	१८३६[8]	२१	,,	,,	१७७९
२२	४	,,	,,	११९४	वैशाख सुदि ५	,,	१८३७	९	,,	,,	१७८०
२३	४	,,	,,	११९५	वैशाख सुदि ६	,,	१८३८	२९	अप्रैल	,,	१७८१
२४	४	,,	,,	११९६	वैशाख सुदि ५	,,	१८३९[9]	१८	,,	,,	१७८२
२५	४	,,	,,	११९७	चैत्र सुदि ५	,,	१८४०	७	,,	,,	१७८३
२६	४	,,	,,	११९८	चैत्र सुदि ५	,,	१८४१	२६	मार्च	,,	१७८४
२७	४	,,	,,	११९९	चैत्र सुदि ६	,,	१८४२[10]	१६	,,	,,	१७८५

(८) इसमें श्रावण अधिक था। (९) इसमें ज्येष्ठ अधिक था। (१०) इसमें चैत्र अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
२८	४ जमादिउल् अ० सन् १२००	फाल्गुन सुदि ७ संवत् १८४२	६ मार्च सन् १७८६
२९	४ ,, ,, १२०१	फाल्गुन सुदि ६ ,, १८४३	२३ फरवरी ,, १७८७
३०	४ ,, ,, १२०२	माघ सुदि ५ ,, १८४४[11]	१२ ,, ,, १७८८
३१	४ ,, ,, १२०३	माघ सुदि ५ ,, १८४५	३१ जनवरी ,, १७८९
३२	४ ,, ,, १२०४	माघ सुदि ५ ,, १८४६	२० ,, ,, १७९०
३३	४ ,, ,, १२०५	पौष सुदि ६ ,, १८४७[12]	१० ,, ,, १७९१
३४	४ ,, ,, १२०६	पौष सुदि ६ ,, १८४८	३० दिसंबर ,, १७९१
३५	४ ,, ,, १२०७	पौष सुदि ६ ,, १८४९	१९ ,, ,, १७९२
३६	४ ,, ,, १२०८	मार्गशीर्ष सुदि ७ ,, १८५०[13]	९ ,, ,, १७९३

(११) इसमें श्रावण अधिक था। (१२) इसमें आषाढ़ अधिक था। (१३) इसमें वैशाख अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम् संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
३७	४ जमादिउल् अ० सन १२०९	मार्गशीर्ष सुदि ७ संवत् १८५१	२८ नवंबर सन् १७९४
३८	४ ,, ,, १२१०	कार्तिक सुदि ६ ,, १८५२[14]	१७ ,, ,, १७९५
३९	४ ,, ,, १२११	कार्तिक सुदि ६ ,, १८५३	५ ,, ,, १७९६
४०	४ ,, ,, १२१२	कार्तिक सुदि ६ ,, १८५४	२५ अक्तूबर ,, १७९७
४१	४ ,, ,, १२१३	आश्विन सुदि ६ ,, १८५५[15]	१५ ,, ,, १७९८
४२	४ ,, ,, १२१४	आश्विन सुदि ६ ,, १८५६	४ ,, ,, १७९९
४३	४ ,, ,, १२१५	आश्विन सुदि ६ ,, १८५७	२४ सितंबर ,, १८००
४४	४ ,, ,, १२१६	भाद्रपद सुदि ५ ,, १८५८[16]	१३ ,, ,, १८०१
४५	४ ,, ,, १२१७	भाद्रपद सुदि ५ ,, १८५९	२ ,, ,, १८०२

(१४) इसमें भाद्रपद अधिक था। (१५) इसमें श्रावण अधिक था। (१६) इसमें ज्येष्ठ अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
४६	४ जमादिउल् आ० सन् १२१८	भाद्रपद सुदि [illegible] संवत् १८६०	[illegible] अगस्त सन् १८०३
४७	४ ,, ,, १२१९	श्रावण सुदि ६ ,, १८६१[17]	[illegible] ,, ,, १८०४
४८	४ ,, ,, १२२०	श्रावण सुदि ६ १८६२	३१ जुलाई १८०५
४९	४ ,, ,, १२२१	प्रथम श्रावण सुदि ,, १८६३[18]	२१ ,, ,, १८०६

(१७) इसमें चैत्र अधिक था। (१८) इसमें श्रावण अधिक था।

अकबर दूसरा ।

शाह आलम दूसरे के पीछे उसका पुत्र मुम्मद अकबरशाह ७ रमजान हि० स० १२२१ (कार्तिक सुदि ९ सं० १८६३ = ता० १९ नवंबर ई० स० १८०६) को दिल्ली के तख्त पर बैठा। इसकी मृत्यु ता० २८ जमादिउस्सानी हि० स० १२५३ (आश्विन वदि ऽऽ सं० १८९४ = ता० २९ सितंबर ई० स० १८३७) को हुई। यह भी नाम मात्र का बादशाह था। इसके पीछे इसका बेटा बहादुर शाह बादशाह हुआ।

सन जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख			विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि			ईसवी सन् मास और तारीख		
१	७ रमजान	सन्	१२२१	कार्तिक सुदि ९	सं०	१८६३	१९ नवंबर	सन्	१८०६
२	७ ”	”	१२२२	कार्तिक सुदि ९	”	१८६४	८ ”	”	१८०७
३	७ ”	”	१२२३	कार्तिक सुदि १०	”	१८६५	२८ अक्तूबर	”	१८०८
४	७ ”	”	१२२४	आश्विन सुदि ९	”	१८६६[1]	१७ ”	”	१८०९
५	७ ”	”	१२२५	आश्विन सुदि ९	”	१८६७	७ ”	”	१८१०

(१) इसमें आषाढ़ अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
६	७ रमज़ान सन् १२२६	आश्विन सुदि ९ संवत् १८६८	२६ सितंबर सन् १८११
७	७ " " १२२७	भाद्रपद सुदि ९ " १८६९[2]	१४ " " १८१२
८	७ " " १२२८	भाद्रपद सुदि ८ " १८७०	३ " " १८१३
९	७ " " १२२९	प्रथम भाद्रपद सुदि ९ " १८७१[3]	२४ अगस्त " १८१४
१०	७ " " १२३०	श्रावण सुदि ९ " १८७२	११ " " १८१५
११	७ " " १२३१	श्रावण सुदि ९ " १८७३	२ " " १८१६
१२	७ " " १२३२	प्रथम श्रावण सुदि ९ " १८७४[4]	२२ जूलाई " १८१७
१३	७ " " १२३३	आषाढ़ सुदि ९ " १८७५	१२ " " १८१८
१४	७ " " १२३४	आषाढ़ सुदि ९ " १८७६	१ " " १८१९

(२) इसमें वैशाख अधिक था। (३) इसमें भाद्रपद अधिक था। (४) इसमें श्रावण अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख			विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि			ईसवी सन् मास और तारीख		
१५	७ रमज़ान	सन्	१२३५	द्वितीय ज्येष्ठ सुदि ८	सं०	१८७७[५]	१५ जून	सन्	१८२०
१६	७ "	"	१२३६	ज्येष्ठ सुदि ९	"	१८७८	५ "	"	१८२१
१७	७ "	"	१२३७	ज्येष्ठ सुदि १०	"	१८७९[६]	२५ मई	"	१८२२
१८	७ "	"	१२३८	वैशाख सुदि १०	"	१८८०[७]	१५ "	"	१८२३
१९	७ "	"	१२३९	वैशाख सुदि ९	"	१८८१	७ "	"	१८२४
२०	७ "	"	१२४०	वैशाख सुदि ८	"	१८८२[८]	२६ अप्रैल	"	१८२५
२१	७ "	"	१२४१	चैत्र सुदि ९	"	१८८३	१६ "	"	१८२६
२२	७ "	"	१२४२	चैत्र सुदि ९	"	१८८४	५ "	"	१८२७
२३	७ "	"	१२४३	चैत्र सुदि ९	"	१८८५[९]	२४ मार्च	"	१८२८

(५) इसमें ज्येष्ठ अधिक था। (६) इसमें आश्विन अधिक और मार्गशीर्ष क्षय था, चंडवाली पंचांग ने पौष क्षय माना था। (७) इसमें चैत्र अधिक था। (८) इसमें श्रावण अधिक था। (९) इसमें आषाढ़ अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख			विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि			ईसवी सन् मास और तारीख		
२४	७ रमज़ान	सन्	१२४४	फाल्गुन सुदि ८	सं०	१८८५	१३ मार्च	सन्	१८२९
२५	७ "	"	१२४५	फाल्गुन सुदि ९	"	१८८६	३ "	"	१८३०
२६	७ "	"	१२४६	फाल्गुन सुदि १०	"	१८८७	२१ फ़रवरी	"	१८३१
२७	७ "	"	१२४७	माघ सुदि ९	"	१८८८[10]	१० "	"	१८३२
२८	७ "	"	१२४८	माघ सुदि ९	"	१८८९	२९ जनवरी	"	१८३३
२९	७ "	"	१२४९	पौष सुदि ८	"	१८९०[11]	१८ "	"	१८३४
३०	७ "	"	१२५०	पौष सुदि ८	"	१८९१	७ "	"	१८३५
३१	७ "	"	१२५१	पौष सुदि ८	"	१८९२	२८ दिसंबर	"	१८३५
३२	७ "	"	१२५२	मार्गशीर्ष सुदि ९	"	१८९३[12]	१६ "	"	१८३६

(१०) इसमें वैशाख अधिक था। (११) इसमें भाद्रपद अधिक था। (१२) इसमें आषाढ़ अधिक था।

बहादुर शाह दूसरा।

मुहम्मद बहादुर शाह अपने पिता के पीछे ता० २९ जमादिउस्सानी हि० स० १२५३ (आश्विन सुदि १ वि० सं० १८९४ = ता० ३० सितंबर ई० स० १८३७) को बादशाह बना। ईसवी सन् १८५७ (वि० सं० १९१४) के गदर में अँग्रेजों ने इसे कैद कर रंगून भेज दिया। बादशाह अकबर (प्रथम) ने जिस मुगल बादशाहत की नींव डाली थी और औरंगजेब (आलमगीर प्रथम) ने अपनी धर्मांधता के कारण जिस नींव को हिला दिया था, उस बादशाहत का अंत बहादुर शाह के कैद होने के साथ हो गया और हिंदुस्तान में से मुगलों की बादशाहत का नाम निशान भी उठ गया।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
१	२९ जमादिउस्सानी सन् १२५३	आश्विन सुदि १ संवत् १८९४	३० सितंबर सन् १८३७
२	२९ " " १२५४	आश्विन सुदि १ " १८९५	१९ " " १८३८
३	२९ " " १२५५	भाद्रपद सुदि १ " १८९६[1]	८ " " १८३९

(१) इस वर्ष में ज्येष्ठ अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
४	२९ जमादिउस्सानी सं० १२५६	भाद्रपद सुदि १ " १८९७	२८ अगस्त सन् १८४०
५	२९ " " १२५७	भाद्रपद सुदि १ " १८९८[2]	१८ " " १८४१
६	२९ " " १२५८	श्रावण सुदि १ " १८९९[3]	७ " " १८४२
७	२९ " " १२५९	श्रावण सुदि १ " १९००	२८ जूलाई " १८४३
८	२९ " " १२६०	प्रथम श्रावण सुदि १ " १९०१[4]	१६ " " १८४४
९	२९ " " १२६१	आषाढ़ सुदि १ " १९०२	५ " " १८४५
१०	२९ " " १२६२	आषाढ़ सुदि १ " १९०३	२४ जून " १८४६
११	२९ " " १२६३	द्वितीय ज्येष्ठ सुदि २ " १९०४[5]	१४ " " १८४७
१२	२९ " " १२६४	ज्येष्ठ सुदि १ " १९०५	२ " " १८४८

(२) इसमें आश्विन अधिक और पौष क्षय था। (३) इसमें चैत्र अधिक था। (४) इसमें श्रावण अधिक था। (५) इसमें ज्येष्ठ अधिक था।

सन् जुलूस	हिजरी सन् मास और तारीख	विक्रम संवत् मास, पक्ष और तिथि	ईसवी सन् मास और तारीख
१३	२९ जमादिउस्सानी सन् १२६५	ज्येष्ठ सुदि १ सन् १९०६	२३ मई सन् १८४९
१४	२९ " " १२६६	द्वितीय वैशाख सुदि १ " १९०७[६]	१२ " " १८५०
१५	२९ " " १२६७	वैशाख बदि ऽऽ " १९०८	१ " " १८५१
१६	२९ " " १२६८	वैशाख सुदि १ " १९०९[७]	२० अप्रैल " १८५२
१७	२९ " " १२६९	चैत्र सुदि १ " १९१०	९ " " १८५३
१८	२९ " " १२७०	चैत्र सुदि १ " १९११	२९ मार्च " १८५४
१९	२९ " " १२७१	चैत्र सुदि १।८ " १९१२[८]	१९ " " १८५५
२०	२९ " " १२७२	फाल्गुन सुदि १ " १९१२	७ " " १८५६
२१	२९ " " १२७३	फाल्गुन सुदि १ " १९१३	२५ फरवरी " १८५७

(६) इसमें वैशाख अधिक था। (७) इसमें भाद्रपद अधिक था। (८) इसमें आषाढ़ अधिक था

(२) फ़ारसी भाषा का एक ऐतिहासिक गद्य-पद्यमय काव्य।

[लेखक—बाबू ब्रजरत्नदास, काशी।]

कुछ समय हुआ कि मुझे गुदड़ी बाज़ार में फ़ारसी की एक पुस्तक मिली जिसका आकार ७½" × ४½" है। यह पुराने बाँसी काग़ज़ पर फ़ारसी की शिकस्त लिपि में लिखी हुई है। इसमें तीन पुस्तकें हैं। पहली वही है जिसका हिंदी-अनुवाद प्रस्तुत कर पाठकों के सामने उपस्थित किया जाता है। यह पुस्तक छब्बीस पृष्ठों में पूरी हुई है तथा प्रत्येक पृष्ठ में दस पंक्तियाँ है। यह गद्य-पद्यमय है, पर अनुवाद गद्य ही में किया गया है। दोनों को अलग अलग जतलाने के लिए पद्यांश ऐसे [   ] कोष्ठकों में दे दिया गया है। दूसरी पुस्तक पत्रों का संग्रह है जो छानबे पृष्ठों में समाप्त हुई है और प्रत्येक पृष्ठ में दस दस पंक्तियाँ हैं। तीसरी भी पत्रों का संग्रह है, पर अपूर्ण है। इन दोनों में भी ऐतिहासिक सामग्री है जो उसके मनन करने के अनंतर पाठकों के सामने उपस्थित की जायगी। अस्तु, अब पहली पुस्तक के विषय में कुछ लिखना उपयुक्त होगा।

सं० १७९६ वि० में मूर्तिमान तमोगुण नादिर शाह ईश्वर की संहारिणी शक्ति का परिचय देने को भारत में आया था। उस चढ़ाई की दो घटनाओं का—कर्नाल युद्ध तथा दिल्ली की लूट का—इस पुस्तक में वर्णन है। इस पुस्तक के नाम का कुछ पता नहीं चलता। अंग्रेजी भाषा में 'हिस्टरी ऑव् इंडिया ऐज़ टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरिअंस' नामक एक विशद ग्रंथ आठ जिल्दों में है जिसमें केवल अरबी तथा फारसी इतिहासों ही से मसाला लिया गया है। उस ग्रंथ में इस घटना-

विषयक दस बारह पुस्तकों का उल्लेख है, पर यह पुस्तक उन सब से भिन्न है। साथ ही ग्रंथकर्ता के नाम का भी कहीं उल्लेख नहीं है, केवल उपनाम 'मीर' का एक शैर से पता चलता है। ऐसी अवस्था में जब तक दूसरी प्रतियाँ प्राप्त न हों और यदि उनमें नाम भी दिए गए हों, तब तक इन विषयों पर कुछ प्रकाश नहीं डाला जा सकता।

इस पुस्तक के पढ़ने से यह स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि ग्रंथ-कर्ता ने केवल आँखों देखी घटनाओं ही का वर्णन किया है। नादिर शाह की चढ़ाई का दिल्ली में समाचार मिलने पर मुहम्मद शाह ने किस प्रकार करनाल की ओर प्रस्थान किया, करनाल युद्ध, दोनों बादशाहों का दिल्ली लौट कर आना, क़त्ले-आम और नादिर शाह का दिल्ली से बाहर निकलने तक का वर्णन देकर पुस्तक समाप्त कर दी जाती है। नादिर शाह करनाल तक किस प्रकार पहुँचा और दिल्ली से अपने देश लौटते समय रास्ते में क्या घटनाएँ हुईं, इनसे ग्रंथकर्ता से कोई संबंध नहीं। उसने जो कुछ स्वयं देखा था वही लिख दिया। वह लिखता है कि—

मरा जीं क़िस्सः मक़सूदे न बाशद।
हमीं दायम गुज़ीं सूदे न बाशद॥
वले दिल ख़ूँ शुद अज़ दर्द-बिरादर।
जिगर रा चश्मे ज़ख्म अंदाज़ नादिर॥

मुझको इस क़िस्से से न कुछ स्वार्थ है और न अब कोई लाभ ही है; पर भाई के कष्ट से हृदय रक्त हो गया है जिसमें नादिर ने चोट मारी है। इसीलिये वह लेखनी से कहता है कि—

बया ऐ ख़ामः ख़ूँ दीदः अफ़शाँ।
बयाँ कुन चंद हर्फ़े मीर ज़ीशाँ॥

इस पुस्तक का अनुवाद हिंदी के विज्ञ पाठकों के सम्मुख उपस्थित है और आशा है कि उनमें से कोई विद्वान् इस पर अधिक प्रकाश डालने की अवश्य कृपा करेंगे। तब तक के लिये इस पुस्तक का

नामकरण 'मीर-कृत नादिर-शाहनामा' के नाम से अस्थायी रूप में कर लिया जाता है।

मीर-कृत नादिर-शाहनामा

ईश्वर के नाम पर जो दयालु और कृपालु है।

[उन सम्राटों के सम्राट् और संसार के पालनेवालों के रक्षक के नाम की (स्तुति करता हूँ) जो चमकते हुए दोनों लोक, सूर्य्य, चंद्रमा और जगमगाते हुए तारों का स्वामी है। उसके द्वार के खड्गधारी मृत्यु हैं जो सूर्य्य से चंद्र तक आज्ञा पहुँचानेवाले हैं। दोनों लोक उसके कटाक्ष के अधीन हैं और विद्रोहियों का सिर मैदान में चौगान का गेंद हो जाता है। उसके क्रोधरूपी नेत्र ही काटनेवाली तलवार हैं और उसकी खिंची तलवार विजय का चिन्ह है। यदि चाहे तो इच्छारूपी अक्षर से पृथ्वी को एक घड़ी में आकाश बना दे। यदि चाहे तो एक दास को राजगद्दी दे दे और राजाओं को कठोर आज्ञा के अधीन कर दे। एक कैदी को संसार का सम्राट् बना दे और नादिर नामक मनुष्य को आज्ञाधिकारी बना दे। (मेरी प्रार्थना है कि) मुहम्मद शाह का रक्षक हो जिस प्रकार प्रलय में नूह का (हुआ था)। मिट्टी और जल से बादशाही देता है और ईश्वर 'होवे'[1] (कहकर) कुल सृष्टि रच देता है। आँखों से रक्त टपकवानेवाली लेखनी आ और इस अच्छे पदवाले मीर के कुछ अक्षरों का वर्णन कर दे।]

ईश्वर पवित्र है। इस खिलाड़ी आकाश ने अपने सामान से विचित्र खेल सजा है और प्रति दिन नए नए रंग से उसे सँवारता है। एक संसारी दास को सहायता से आगे बढ़ाकर राजगद्दी पर प्रतिष्ठित करता है और एक बार ही सम्राट् की तलवार को कागज के समान

१—मूल में कुन शब्द है जिसका अर्थ 'हो' है। मुसलमानी धर्म पुस्तकों में लिखा है कि खुदा ने यही शब्द कहकर सृष्टि की रचना की थी।

युद्ध में फेंक देता है। प्रभावशाली सूर्य्य जो ठीक मध्याह्न के समय केतु से पकड़ा जाकर काला कर दिया जाता है और रात्रि में शोभित होनेवाला चंद्र जो नीच राहु से ग्रसा जाता है, सो उसी की महिमा है।

अंतत: इन्हीं दिनों[१] एक कार्य्य आश्चर्यजनक चाल से हुआ कि ईरान के सुलतान[२] के नादिर[३] नामक एक दास ने स्वामिद्रोह पर पाँव रखा और अपने स्वामी को मृत्यु के मुख में डालकर, उसके दाँव को काटकर और उसके जीवन के चिन्ह को जलाकर आप ही राज्य का स्वामी बन गया[४]। कुछ ओछे और कम साहसी मनुष्यों के उभाड़ने से इसके मस्तिष्क में हिंदुस्तान के राज्य की लालसा पैदा हो गई। धोखे और बहाने से हर एक जाति और दिशाओं से बहुत भारी सेना एकत्र करके इसने इस कुकर्म्म के लिये दृढ़ता से कमर बाँधी और इस नीच विचार के साथ उस अयोग्य स्थान से दो लाख सवारों सहित कूच करता हुआ वह हिंदुस्तान की ओर चला।

१—इन शब्दों से ज्ञात होता है कि लेखक अपने समय की घटित बातें लिख रहा है।

२—शाह का तहमास्प नाम था और इसने सुलतान हुसेन सफ़वी को उसकी अफ़ग़ान सेना सहित परास्त किया था। सन् १६३२ ई० में नादिरशाह ने इसे गद्दी से उतार दिया और इसके अल्पवयस्क पुत्र शाह अब्बास को गद्दी पर बैठाकर स्वयं राज्य का प्रबंधकर्ता बन बैठा था।

३—इसका नाम तहमास्प कुली था और इसका जन्म सन् १६६८ ई० में खुरासान में हुआ था। इसका पिता तुर्की जाति का था जिसका नाम इमाम कुली था। पहले इसने खुरासान के सूबेदार की नौकरी की पर उद्धत स्वभाव के कारण निकाल दिया गया। तब क़िलात में चाचा के यहाँ गया, पर वहाँ भी षड्यंत्र रचने के कारण निकाला गया। तब डाकू हो गया और अपने चाचा को मार डाला। इसके अनंतर शाह तहमास्प से क्षमाप्रार्थी होकर इसने उनकी नौकरी कर ली थी।

४—जिस समय नादिर शाह तुर्कों को परास्त कर जौर्जिया और आर्मीनिया प्रांतों पर अधिकार कर रहा था, उसी समय शाह अब्बास की मृत्यु हो गई। तब उसने अरास नदी के तटस्थ नगर मोगन में कुल सर्दारों और सेनापतियों की एक बृहत् सभा करके निश्चित करा लिया कि वही ईरान का शाह होने योग्य है। इस प्रकार ६ फरवरी सन् १७३६ ई० को तहमास्प कुली खाँ नादिर शाह की पदवी से ईरान के तख़्त पर बैठा।

[जब नादिरशाह ईरानी भारत की ओर चला तब ज्ञात होता था कि नूह[१] के समय का सा दूसरा प्रलय उपस्थित हुआ है। हलाकू[२] के वैभव और फिरऔन[३] के ऐश्वर्य्य के साथ वह संसार का कष्ट काबुल[४] आ पहुँचा। पहाड़ी अफ़ग़ान भी उसके मित्र तथा पथप्रदर्शक हो गए और उसके लिये अटक नदी वैसी ही छिछली बन गई जैसे प्रलय समुद्र औज[५] के लिये था। एकाएक वह लाहौर के पास पैदा हो गया मानों पृथ्वी फट गई और उसमें से बड़ा शैतान दज्जाल[६] निकल आया हो। उसके क्रोध रूपी आरे के डर से ज़िकरिया[७] साहस

१—मुसलमानों में प्रसिद्ध है कि नूह के समय प्रलय हुआ जब संसार जलमग्न हो गया था। यह गल्प भी मनु के प्रलय की सी है।

२—हलाकूखाँ तूलीखाँ का पुत्र और चंगेज़खाँ का पौत्र और चौथा उत्तराधिकारी था। सन् १२५३ ई० में इसने अपने भाई मंगू ख़ाँ के समय में फारस पर अधिकार किया और इस्माइ-लियों का नाश कर डाला। सन् १२५८ ई० में इसने बग़दाद विजय कर उसकी आठ लाख प्रजा को कटवा डाला। सीरिया में इसके एक सेनापति के परास्त होने पर इसने स्वयं वहाँ जाकर शांति स्थापित की और इसी वर्ष भाई की मृत्यु पर मारागा राजधानी बनाई और आठ वर्ष राज्य कर सन् १२६५ ई० में वह मर गया। इसके समय फ़ारस का साहित्य उन्नत हुआ। सादी शीराज़ी इसी के समय में हुआ था।

३—मिस्र देश का एक बादशाह हो गया है जो बड़ा ऐश्वर्य्यशाली और घमंडी था। यह मूसा नामक पैगंबर का समसामयिक था।

४—काबुल आने के पहले उसे एक वर्ष कंधार विजय करने में लग गया था और वर्तमान कंधार की नींव भी उसी ने नादिराबाद के नाम से डाली थी।

५—औज एक बहुत भारी शरीरवाले आदमी का नाम था जो आदम के समय पैदा हुआ था। कहते हैं कि यह ३५०० वर्ष जीवित रहा और नूह के प्रलय में समुद्र इसकी कमर तक पहुँचा था। इसके पिता का नाम औक़ था और मूसा ने अपनी छड़ी इसके टखने में मारकर इसे मार डाला था।

६—ईसा मसीह का शत्रु था।

७—अब्दुस्समद खाँ का पुत्र था और इसका पूरा नाम ज़िकरिया खाँ बहादुर हिज़बजंग था। उस समय यह पंजाब का सूबेदार था और प्रबंध अच्छा करता था। लौटते समय नादिर शाह ने इसके कहने से बहुत से कैदी छोड़ दिए थे। सन् १७४५ ई० में सिंध में इसकी मृत्यु हुई। इसका बड़ा पुत्र शाहनवाज़ खाँ पंजाब का सूबेदार हुआ।

न कर सका और आतिथ्य तथा स्वागत के लिए वह बाहर निकला। जैसे ही यह समाचार हिंदुस्थान के बादशाह के पास लाया गया, वैसे ही उसने सर्दारों को कहने के लिये बुलवाया। वज़ीरुल्मुल्क आसफ़जाह और बख्शीउल्मुमालिक को बादशाह के पास लिवा लाए। (बादशाह ने) कहा कि दुःख है कि अधर्मी नादिर आया है, इसलिये ईश्वरी धर्म के लिए साहस के साथ कमर बाँधना चाहिए। यह राफ़िज़ी[1] हम लोगों से युद्ध करने आया है; पर मैं तैमूर साहबक़िरां दूसरे[2] के वंश का हूँ। सर्दारों ने प्रार्थना की कि ऐ संसार के पालक, हम लोगों का ईश्वर रक्षक है और यह बादशाही गद्दी बनी रहे। जब कि बादशाही प्रताप हमारे साथ रहेगा तब ऐसे सौ नादिरों को युद्ध होने पर रक्त में लोटावेंगे। युद्ध की सम्मति होने पर बादशाह अमीरों की सेना सहित दिल्ली के बाहर निकले। प्रकट में राज्य के सभी सर्दार एक मत थे, पर उनके हृदय में लोभ के कारण द्वेष और कपट भरा हुआ था।]

अंत में बादशाह ने सेना, ऐश्वर्य्य और बड़े सर्दारों के साथ जिसमें आसफ़जाह निज़ामुल्मुल्क बहादुर[3], उम्दतुल्मुल्क वज़ीरुल्मुमालिक क़मरुद्दीन खाँ बहादुर,[4] बख्शीउल्मुल्क सिपहसालार खानेदौराँ

१—राफ़िज़ी उसे कहते हैं जो अपने मतप्रवर्तक से फिर जाय।

२—तैमूरलंग ने दो नक्षत्रों के संयोग के समय जन्म लिया था इससे वह साहिबक़िराँ कहलाता था। शाहजहाँ ने साहिबक़िरानेसानी अर्थात् साहिबक़िराँ द्वितीय की पदवी धारण की थी।

३—इनका नाम चिंकिलीच खाँ था और इन्हीं ने हैदराबाद के निज़ाम राजवंश का स्थापन किया था। इन्होंने सन् १७१७ ई० में असीरगढ़ विजय किया और तीन वर्ष के अनंतर दो मुग़ल सेनाओं को परास्त कर ये स्वतंत्र हो गए। मुहम्मद शाह ने बुलाकर इन्हें वज़ीर बनाया; पर कुछ दिन बाद ये त्यागपत्र दे लौट गए। नादिरशाह की चढ़ाई के समय आए और फिर हैदराबाद लौट गए जहाँ १०४ वर्ष की अवस्था को पहुँचकर सन् १७४८ ई० में इनकी मृत्यु हुई। इन्होंने एक दीवान भी बनाया था।

४—इनका नाम मीर मुहम्मद फ़ाज़िल था और ये एतमादुद्दौला मुहम्मद अमीन खाँ के पुत्र थे। सन् १७२४ ई० में ये वज़ीर नियत हुए और ११ मार्च सन् १७४८ ई० को सरहिंद के पास अहमद शाह अब्दाली के युद्ध में गोला लगने से मर गए।

बहादुर,[1] मुजफ्फर खाँ बहादुर, मुजफ्फरजंग मुहम्मद खाँ बहादुर,[2] अमीर खाँ बहादुर आदि सभी सर्दार थे, राजधानी शाहजहानाबाद अर्थात् दिल्ली से कूच किया। थोड़ी सेना के साथ युद्ध करने की सम्मति हुई। कुछ ओछे सर्दार इस सम्मति को निश्चित समझकर आपस के वैमनस्य से प्रगट में तो साथ रहे, पर हृदय में बादशाह से कपट रखकर पत्र और सँदेसे से स्वामिद्रोही होकर उन्होंने नादिर से प्रतिज्ञा कर ली। कूच करती हुई यह विजयवाहिनी करनाल के पास, जो राजधानी शाहजहानाबाद से बावन कोस पर है, पहुँच कर ठहरी। सबेरे मंगल के दिन १५ वीं जीक़द: को बुर्हानुलमुल्क सआदत खाँ कुशलतापूर्वक पीछे से पहुँच कर बादशाही सेना में मिल गए। बिना बादशाही सेवा में हाजिर हुए और आज्ञा लिए अपनी इच्छा और कपट से मूर्खता कर इन्होंने युद्ध की तैयारी कर दी[3]। जब यह आश्चर्यजनक समाचार मिला कि मूर्ख सआदत खाँ बिना बादशाह की आज्ञा तथा सर्दारों की सम्मति के शत्रु से लड़ने गया है, तब बादशाह ने उसकी मूर्खता पर शोक प्रकट किया। पर सहायता देना आवश्यक समझकर समसामुद्दौला बहादुर को उनके भाई मुजफ्फर खाँ तथा कई सर्दारों सहित युद्धस्थल में भेजा। वे दोनों वीर जो वीरता रूपी वन के शेर तथा

१—यह सन् १७२१ ई० में सैयद हुसेन अली के मारे जाने पर अमीरुलउमरा नियुक्त हुए और इन्हें शम्सुद्दौला की पदवी मिली। १६ फ़रवरी सन् १७३६ ई० को उसी युद्ध में मारे गए।

२—तारीखे-हिंदी में जीहिज्जः का आरंभ लिखा है (इलि० डाउ० जि० ८ पृ० ६१) पर आनंदराम मुखलिस के तजकिरा में १४ जीक़द: है (इलि० डाउ० जि० ८ पृ० ८२)

३—'१४ जीक़द: को जब बादशाह से भेंटकर बुर्हानुलमुल्क अपने खेमें में पहुँचे तब समाचार मिला कि पानीपत से आते हुए उसको सामान को कजिलबाश सेना ने लूट लिया और बहुत से सैनिक मारे गए। बुर्हानुलमुल्क क्रोध के मारे, युद्धस्थल की ओर बिना तैयारी के कुछ सेना के साथ दौड़ पड़े।' (इलि० डाउ० जि० ८ पृ० ८२)

साहस रूपी युद्धस्थल की तलवार थे, फुर्ती से मैदान में पहुँचे[१]। वहाँ सआदत खाँ ने, जो कि चाहता था कि अपने को प्रकट में शत्रु के हाथ कैद करा दें, उस सेना पर धावा कर दिया। नादिर शाह ने इस अवसर को अच्छा समझकर बहुत सवारों के साथ दाएँ तथा बाएँ की सेनाओं को सजाकर अपने मंत्री तहमास्प के अधीन चालीस हजार सवार का हरावल नियत किया। इन सवारों ने, सिंह और गर्दभ के युद्ध के समान उन वीरों से तीरों और गोलियों से युद्ध आरंभ किया। युद्ध की गर्मी, तोपों के गोलों की अग्निवर्षा, चपल तीरों की बौछार और निडर वीरों के खड्ग चलने से पृथ्वी और आकाश के बीच कोलाहल मच गया तथा साहसी बहादुरों के कठोर युद्ध से पृथ्वी पर की धूल स्वर्ग तक पहुँच गई थी। बादशाही सेना के वीर दृढ़ता से डटकर और धीरे धीरे रास्ता बनाते हुए स्वामिभक्ति पर प्राण निछावर करने को तैयार रहकर बड़े कौशल तथा साहस के साथ शत्रु के हरावल पर टूट पड़े। नीच वज़ीर को उसके दुर्भाग्य की तलवार से काटकर गिरा दिया; पर मीर मुशरिफ के पुत्र मीर कल्लू, अली हामिद खाँ कोका, आक़िल खाँ कमालपोश और इसलह खाँ ख्वाजःसरा अपने साथियों के साथ वीरता के मैदान में बहादुरी दिखलाकर मारे गए। जब डंके पर चोट पड़ी तब मुज़फ्फ़र खाँ ने तलवार लेकर तथा हाथी से उतरकर शत्रु पर आक्रमण किया और वे रुस्तम के समान वीरता दिखलाकर मारे गए। इस युद्ध में सात हाथी, नौ सौ घोड़े और तेरह सहस्र मनुष्य दोनों ओर के मारे गए तथा घायल हुए। अंत में ईश्वरेच्छा से उन्हें वीरगति प्राप्त हुई।

१—बुर्हानुलमुल्क के कई बार सहायता माँगने पर अमीरुलउमरा को जाने की आज्ञा हुई। ये सोच विचार में थे कि समाचार मिला कि बुर्हानुलमुल्क ने नादिर शाह को कुछ सवारों के साथ घेर लिया है। यह सुनकर शाह के क़ैद करने का यश बाँटने को झट वहाँ पहुँचे। (तारीख फरहबख्श, डाक्टर हुई कृत अनुवाद, जि० १, परि० पृ० ५)।

[युद्ध में प्रलय के समान कोलाहल था मानों आजही असराफ़ील दौड़ रहे थे। पृथ्वी पारे के समान काँप उठी और आकाश पानी की तरह आग बरसा रहा था। एक के भौं रूपी कमान पर काल द्वारा प्रेरित भाग्य रूपी तीर आ लगा था। एक का सिर मैदान रूपी थाली में लाल दाँतवाले शहीदी तर्बूज़ के समान जुदा होकर पड़ा था। एक हाथ में तलवार लेकर शरीर काटता हुआ शेर के धावे के समान हर ओर दौड़ता था। बाण रूपी लेखनी से शिकस्त लिपि में एक की कपोल रूपी पट्टी पर लिखा हुआ था कि इस कृतघ्न संसार को बाग सा देखा, पर फूल में लाल: सा घाव भी देखा। एक के ओंठ पर गहरे घाव की मुहर, तो एक के हृदय में कटारी की नोक थी। एक, जिसके पैर हिल नहीं सकते, मैदान में कमर तक रक्त में डूबा हुआ बैठा था। एक ने हाथ से तलवार मारी पर बाईं ओर से दूसरे ने उसे मारा। एक ज़ीन पर था पर प्राणहीन था और एक नाशमान चिह्न के समान लाल था। एक बिजयी होकर रक्त से लाल हो गया था और एक ने जामे को लाल कर लिया था। एक ने भाले की अनी को छाती में निगल लिया था और एक का सिर टुकड़े टुकड़े हो गया था। एक ने पेट में तलवार खा ली थी, देखता हूँ कि जीवन से उनका मन भर गया था। एक घोड़ों के पैरों के नीचे चौगान में पड़े थे जो कभी सूखे में और कभी रक्त में लुढ़क रहे थे। एक तीर के हाथ से प्राणहीन था तो एक का शरीर बिना सिर के पड़ा हुआ था। करनाल का बिंदु नीचे हो जाय और लाम के पहले का अलिफ़ आगे दे दिया जाय तो करनाल कर्बला हो जाय जिससे जय्याद का पुत्र नादिर सार्थक हो जाय[1]।]

जब समसामुद्दौला ने बची हुई सेना की गड़बड़ी को अपनी

१—کرنال का बिंदु नीचे कर देने तथा ना का अलिफ आगे बढ़ाने से کربلا शब्द बन जाता है जहाँ इमाम हुसैन मारा गया था। ज़य्याद उस पुरुष का नाम था जिसने हज़रत मुहम्मद के विरुद्ध गवाही दी थी।

आँखों से देखकर अपने हरावल सिपहदार खाँ को आज्ञा भेजी कि जो सेना साथ हो उसे ले आगे बढ़कर शत्रुओं को दंड दें, उस समय खाँ ने आज्ञानुसार साहस किया कि उस आज्ञा का पालन करें। पर कर्म ने ऐसा किया कि ठीक घोर युद्ध के समय उसका दुष्ट हाथी भाग चला और न ठहरा। इसी समय इसे कई घाव लग चुके थे और मैदान से बादशाही सेना में लाए गए। परंतु सैयद शहामत खाँ बारहः, हुसेन खाँ लोदी, नवाब यादगार खाँ कश्मीरी का हमजुल्फ रहमतुल्ला खाँ, मलिक सर्दार, दरवेश अली खाँ अपने भाई के साथ और दूसरे अनुभवी सर्दारों ने स्वामिभक्ति पर प्राण निछावर करना निश्चित कर तथा हरावल के झंडों को न छोड़ कर चार घड़ी तक बड़ी वीरता से गोली गोले और तलवार से लड़ाई की। बहुत से शत्रुओं को नरक भेजकर तलवार का पानी पीने की इच्छा से शहादत की चाशनी चखी। खानेजमाँ मतवाले, खैरुल्ला खाँ बख्शी, तोपखाने का दारोगा शेर अली खाँ, बदनसिंह के पुत्र सूरजमल जाट और राजा जयसिंह कछवाहा की सेना मैदान में न ठहर सकी और भाग चली। जब दाएँ और बाएँ की सेना के स्थान खाली हो गए तथा हरावल के सैनिक मारे गए और घायल हो गए, तब दुष्टों की सेना ने मुसलमानों की सेना को 'साद के वध के समान' चारों ओर से घेर लिया। युद्धस्थल को कर्बला के रक्त से रँग दिया। इसी गड़बड़ में नवाब की सवारी के हाथी ने दूसरी गड़बड़ी मचा दी अर्थात् वह दुर्भाग्य से मस्त हो गया और दौड़ने लगा। जब एक दूसरा भारी हाथी लाए तब नवाब पहला मिसरा कहने पर काफिया न मिलने से अच्छे अर्थ के न बैठने की घबड़ाहट के समान हौदे पर बैठे। दूसरे मतलः की रदीफ़ हुई कि आकाश जो अजीब आशय रखता था वह इस हाथी से भी अटपट गज़ल कहलाने लगा[1]। राय खुशहाल चंद के पुत्र रत्नराय ने अपना हाथी नवाब

१. अर्थात् वह भी मस्त होकर इधर उधर दौड़ने लगा।

के बराबर लाकर प्रार्थना की कि इसपर सवार हों। नवाब प्रार्थना मानकर उस पर सवार हुए। नवाब के ठीक सवार होते समय ख्वाजासरा एतबार खाँ पास ही अपने हाथी को खड़ा कर गोली चला रहा था कि एकाएक एक गोली सिर पर लगने से हाथी पर से गिर पड़ा। रत्नराय ने नवाब की खवासी में रहने को साहस का दफ़र आगे रखा था कि तीर अंदाजी की कलम झट उसपर चल गई अर्थात् एकाएक बंदूक का एक तीर भौं रूपी धनुष के बीच में कपोल पर धब्बे के समान आ लगा और मुख पर मृत्यु झलकने लगी। जब सर्दारों और मित्रों के इस प्रकार वीरगति प्राप्त करते और मृत्यु के विजयी झंडे को फहराते देखा तब अमीरुल्उमरा खानेदौराँ बहादुर थोड़े सैनिकों के रहने और पुत्र तथा भाई के मारे जाने पर भी तलवार से युद्ध करने की इच्छा से स्वयं मैदान में आने का विचार कर हाथी पर से कूद पड़े। उसी समय ज़मींदोज़ तोपखाने की छोटी तोप के दो गोले आकर बगल में लग गए। हाय हाय क्या बैठना क्या उठना[१]।

[ए कठोर हृदय अकाश यह क्या कपट है कि घाव पर नमक और शीशे के कंटर पर पत्थर मारता है। मारनेवाले के हाथ में तलवार देता है और हृदय छीननेवाली सुंदरी को खड्गयुक्त करता है। ऐसी भूल के साथ मित्रता करता है कि अली के पुत्र का सिर भाले पर रखता है। इस काले मुखवाले आकाश के प्रत्येक चक्र को देखो कि लोमड़ी शेर का शिकार करती है।]

अंत में बचे हुए लोगों ने नवाब को बचा हुआ न मानकर उनके शव को हाथी सहित युद्धस्थान से बाहर ले जाना निश्चित किया जिससे स्वामिभक्ति टपकती थी। लड़ते हुए भागकर बादशाही सेना में पहुँच गए। नवाब को एक खेमे में उतारकर उनके बचे हुए सैनिकों

१—खानेदौराँ के विषय में लेखक ने जिस प्रकार सहृदयता से तथा प्रशंसा के साथ लिखा है, उससे ज्ञात होता है कि वह स्यात् उसका आश्रित रहा हो।

से कुछ को रक्षा का काम सौंपा। सबेरे नवाब आसफजाह ने देखने के लिये आकर उनके घाव आदि का निरीक्षण किया और पूछा कि समयानुकूल अब आपकी क्या सम्मति है। उत्तर दिया कि जो कुछ हमारे समय के अनुकूल था, वह हो चुका। अब जो कुछ आप लोगों की सम्मति हो उसे करने को आप स्वतंत्र हैं; पर हिंदुस्तान की प्रतिष्ठा का जन्मस्थान से अधिक ध्यान रखना आपको उचित है। इसके अनंतर आसफ़जाह को बिदा करने पर प्राण निकल गया[1]।

[इस दुखी कुव्यवस्थित संसार में अत्याचार तथा मिट्टी के घरों में अंधकार है। ऐसा हृदय न हुआ कि जिसे दुःख न हुआ हो और ऐसा कलेजा कहाँ है जिसने रक्त का स्वाद न लिया हो। ऐसा सिर नहीं जिसे घूमते आकाश ने नहीं लूटा और कोई कष्ट खून पीनेवाले से कम न देखा। नहीं जानता कि ऐ अपवित्र आकाश तुझको घायल प्राण या हृदय से क्या द्वेष है। मुख्यतया यह कि तूने निर्दय नादिर शाह को हिंदुस्तान में भेजा और मुग़लों के उस शत्रु के हाथ में मुहम्मद शाह ग़ाज़ी को तू ने ले जाकर सौंपा। अंत में जब यह समाचार बादशाह को मिला कि खानेदौराँ मर गया तो वह दुखी हृदय से रोया और दिल टुकड़े टुकड़े किया। इसके अनंतर सेनापति आसफ़-जाह ने निरुपाय होकर बादशाह से प्रार्थना की कि अब यही उचित है कि नादिर शाह से झट संधि कर ली जाय। सर्दारों ने भी यही निश्चित किया और बादशाह को भी यह राय पसंद आई[2]। जब

१—इतनी वीरता से लड़कर मारे जानेवाले सर्दार को मुहम्मदशाह ने तत्काल ही यह पुरस्कार दिया कि अन्य अफ़सरों को भेजकर उसकी सब संपत्ति उठवा मँगाई जो उसके उत्तराधिकारियों के लिए छोड़ देना अधिक उपयुक्त होता।

२—तज़किरा में लिखा है कि नादिर शाह ही ने पहले संधि का प्रस्ताव किया जिसका कारण बयान वक़ी में यह दिया गया है कि कर्नाल के युद्ध में हिंदुस्तान की सेना की वीरता देखकर जिन्होंने गोली गोलों का सामना तीरों से किया था, वे डर गए थे और उन्होंने सोचा

वृद्ध अनुभवी एकमत हुए तब वह नादिर शाह के पास गए। बड़ी बुद्धिमानी से बहुत सी बातें उससे कहीं और क्या देना होगा सो निश्चित किया कि वह अधिक धन देने पर ईरान की ओर मुख फेर देंगे। नादिर शाह को यह बात मान्य हुई और आसफ़जाह से प्रतिज्ञा कर ली। जब आसफ़जाह ने बादशाह के पास लौटकर हाल कहा कि यद्यपि मैंने बहुत धन पर अपने को बेचा, पर कुत्ते के मुँह को एक कौर से सी दिया। बादशाह इस उपाय से बड़े प्रसन्न हुए और उसी समय बख़्शीगिरी[1] की ख़िलअत दी। सआदत ख़ाँ ने जब यह जाना तब मारे द्वेष के कपटी हो गया। सैकड़ों उपाय करके ख़ानेदौराँ की मृत्यु बुलाई। पर अफ़सोस कि मेरी इच्छा पूर्ण न हुई और अब दूसरा उपाय करना चाहिए। एकांत में नादिर शाह के पास चला और संसार उसके कारण दूसरे दिन दुर्घटनापूर्ण हुआ। (जाकर कहा कि) ऐ शाहंशाह हम लोगों की जान निछावर है। इतने ही धन पर तूने संधि कर ली, पर इस संधि का रहना ठीक नहीं। यदि दिल्ली में आप स्वयं जायँ तो हर ओर कोष खुलवाएँगे। जब नादिर ने यह बात कान से सुनी तब वह प्रसन्नता से सोए हुए खरगोश के समान कूद पड़ा। जाने का रास्ता पूछा तो भटके हुए सआदत ख़ाँ ने पता बतलाया कि पहले आसफ़जाह को बुलाना चाहिए और बहाने से अपने आगे बैठा रखिए। इसके बाद बादशाह को बुलवाइए और तब कुछ इच्छा पूर्ण हो जायगी। नसक़ची को बुलाकर कहा कि जल्दी आसफ़जाह को लिवा लाओ। नसक़ची आकर आसफ़जाह को लिवा ले गया और उससे नादिरशाह ने बहाना किया। आसफ़जाह के उपायों से उस शाह ने कहा कि ऐ वृद्ध नीतिज्ञ अपने बादशाह को यहाँ बुलाओ। नहीं तो

कि जब बादशाह कुल तोपख़ाने के साथ युद्ध करेगा तब न जाने क्या होगा। (इलि० डाउ० जि० ८ पृ० ८४)।

[1]—अमीरुल्उमरा की पदवी ख़ानदौराँ के मृत्यु के कारण रिक्त हो गई थी।

शाह को सर्दारों के सहित अपने साथ ईरान ले जाऊँगा। निज़ामुल्मुल्क ने जब यह होश उड़ा देनेवाली बात सुनी तो उसके हृदय को इस बात ने मोती को पत्थर के समान मारा। बादशाह को बुलाने के सिवा और कुछ न सूझा जो मूर्ख कपटियों की दवा है। प्रार्थना की कि ए दिलजले बादशाह! आपका आना यहाँ आवश्यक है; नहीं तो संसार नष्ट होगा और इसके अत्याचार से बुरा हाल होगा। मुहम्मद शाह ने जब यह सुना तब वह निज़ामुलमुल्क के कथन से निरुपाय होकर बहादुरी से तख्त पर बैठ उस अत्याचारी पड़ाव की ओर चला। नादिर शाह द्वार पर आया[१] और उसके भाग्य से खुदा राज़ी था। फिर मसनद की ओर चले और जहाँ मसनद बिछी थी, पहुँचे। दोनों वीर बादशाह साथ बैठे, मुहम्मदशाह और ईरानी बादशाह। हर ओर यह सुनाई पड़ने लगा कि फिर से मित्रता का मार्ग खुल रहा है। सआदत खाँ ने जब ये बातें सुनी (तो सोचा) कि राह भूल गया हूँ और अब दूसरी ठीक करनी चाहिए। वहाँ से नादिर के आगे गया और उसके कान में सैकड़ों मंत्र पढ़े[२]। वहाँ से नादिर शाह एकांत में गया और वहाँ दोनों ने एक राय ठीक की। अंत में यही राय ठीक हुई कि सआदत खाँ जल्दी दिल्ली जाय। वह ना-सआदत[३] भारी सेना के साथ चला तो मानों आँधी का दरिया को धक्का लगा हो। दुर्ग और नगर के बीच उतरा, सो मानों ईश्वरी कोप आया हो। उसने नादिरशाह को समाचार लिखा कि मैंने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। ज्योंही

१—शाह के पुत्र मिर्ज़ा नसरुल्ला ने पड़ाव की सीमा तक आकर स्वागत किया और खेमे तक लिवा गया जहाँ नादिर शाह ने स्वयं स्वागत किया था।

२—तज़किरा में बुर्हानुलमुल्क के विषय में इन सब षड्यंत्रों का उल्लेख नहीं किया गया है।

३—बुर्हानुल्मुल्क का नाम सआदत खाँ था। सआदत का अर्थ है—नेकी या भलाई। उसी शब्द में ना लगा देने से अर्थ उलटा हो गया।

यह बात सुनी त्योंही नादिरशाह ने कूच का डंका पिटवा दिया। संसार से शोर उठा कि दैवी बला कहाँ से आ पड़ी। मनुष्यों को मारने पर कमर बाँध हलाकू के समान नादिर चला। कर्नाल से कूच कर दिल्ली नगर को दज्जाल (एक ईरानी नदी) के समान आया। कुल शहर में हड़ताल पड़ गई कि आग लगानेवाला नादिर आया है। मुहम्मद शाह और ईरान का यह सुलतान सर्दारों के साथ दुर्ग में गए। सवेरे नादिर शाह ने आज्ञा दी कि रत्नागार और कोष खोला जाय। सआदत खाँ के मन में कपट था, इससे कुछ कोष नादिर को दे दिया। पर सआदत खाँ के कथनानुसार कोष तथा माल का एक भाग भी न मिला। नादिर क्रोध से जल उठा कि ऐ वृद्ध, तैंने यह क्या कपट किया था। मुझसे सैकड़ों प्रतिज्ञाएँ कीं और अपने बादशाह से द्रोह किया (नमकहरामी की)। कहाँ वह कोष है जिसकी तूने प्रतिज्ञा की थी? पर तूने बादशाहों का क्रोध नहीं देखा है। अपने बुरे आचरण का फल देख कि तेरे प्रत्येक बाल को कष्ट दूँगा। जो नसकची शाह के सामने लाए थे, उन्हीं के कैद में रखा। जब सआदत खाँ ने यह क्रोध देखा तब उसे सिवाय मरने के दूसरा उपाय न सूझा। अपने हाथ के हीरे को खा लिया जिससे एक बार ही हृदय कट गया और वह मर गया[1]। नादिर ने कहा कि नमक के हक को कुचला और मर गया। जो लोग उसके रक्षक थे, उन्होंने उसका शव दुर्ग के बाहर फेंक दिया। अच्छे कवि ने ठीक कहा है कि लालची का अंत जंगल या धन में होता है। याद रखो कि धन अपनी काटनेवाली शक्ति से अलग नहीं है; क्योंकि देखा कि अपने कर्म का क्या फल हुआ। किसी

१—कई इतिहासों ने सआदत खाँ पर आत्महत्या का दोष लगाया है; पर अन्य इतिहासों से इसमें यही विशेषता है कि इसने विष का नाम लिख दिया है जो वास्तव में उस कठिन कारागार में उसी के शरीर पर प्रस्तुत था। इसी कारण साधारणतया इस विष का प्रयोग छिपा रह गया और उसकी मृत्यु रोग आदि से मान ली गई।

के सिर में यह विचार उठा कि नादिरशाह[1] मारा गया। उसने हर गली और बाजार में खबर कर दी कि तेज तलवार से नादिर मारा गया। नगर के साधारण लोगों में यह बात फैल गई और इस सुसमाचार को प्रत्येक मनुष्य जान गया। एक ने कहा कि मैंने प्रार्थना की थी और मेरी इच्छा पूरी हो गई। एक ने कहा कि मेरे दादा पीर थे जिन्होंने मेरे लिये यह उपाय किया है। एक ने कहा कि मैं दुःखित हृदय से सोया था तो जो स्वप्न देखा था, उसी का यह फल है। एक ने कहा कि मैंने शकुन विचारा था उसी से अभी यह पता चला है। एक ने कहा कि मुगल बेहोश था, जब कि हमारे बादशाह ने उसे खर्गोश की तरह मार डाला। एक ने कहा कि उसे विष दिया था और इसी प्रकार हर एक बातें कह रहे थे। शहर में इस प्रकार चारों ओर गुल मचा और हर एक ने तीर, तलवार और लाठी उठाई। जहाँ नादिर की सेना पाई, उसके हर एक सैनिक को मार डाला। मारे जानेवालों की जाति ने फरियाद की और एकाएक नादिर शाह को यह समाचार मिला[1] कि नगर में अकस्मात् यह गप्प उड़ी है कि नादिर शाह मारा गया। वह ऐसा क्रुद्ध हुआ मानों रूई में आग लग गई हो या जैसे लौ में पड़ कर कीड़े जल मरते हैं। अपने नसकचियों को आज्ञा दी और क़त्ले आम का इशारा किया। नसकची ने ज्योंही अपनी सेना को आवाज दी त्योंही हर ओर तलवार खिंच गई। बादल के समान हर गली में घुस गए और सभी को मारने लगे। हर गली और बाजार में क़तल हुआ और पृथ्वी का रंग खून से धो दिया। हर एक गली रोने पीटने से भर गई और संसार खून मिट्टी से भर उठा। हर एक घर से रोना तथा चिल्लाहट सुनाई पड़ रही थी और हर गली में

१—पाँच सहस्र ईरानी सेना के मारे जाने पर नादिर शाह को यह समाचार मिला था और तब उसने दुर्ग से निकलकर रौशनुद्दौला की बनवाई मसजिद में आकर क़त्ले आम की आज्ञा दी थी। (तारीखे-हिंदी)।

अत्याचार हो रहा था। नगर के बीच हर जगह मार काट हुई और मनुष्यों की लाशों का ढेर लग गया। दो लाख मारे गए[1]; स्त्री, पुरुष, वृद्ध और दुधमुँहे बच्चे गिने गए। यह कलेजा फाड़नेवाली बात कही नहीं जा सकती, यहाँ तक कि लेखनी रोती है कि छोड़ दो। जब मुहम्मद शाह को यह समाचार मिला, तब शोक से मन डाँवाडोल हो गया। तब ईरान के सुलतान नादिर के पास एकांत स्थान में साहस कर पहुँचा[2]। कहा कि ऐ खुदा से न डरनेवाले! होश में आ, उस प्रलयकारी विजयी से डर। मनुष्यों के मारने पर क्या कमर बाँधी है, दोनों लोक के ईश्वर से नहीं डरता। इस विजय पर घमंड मत कर, क्योंकि यह तलवारबाजी दस दिन की है। मृत्यु के बाद प्रलय की याद कर कि मारे जानेवालों की फ़रियाद का क्या उत्तर देगा। रक्तपिपासु तलवार से संसार को शांति दे और ऐ होशियार पुरुष, क्रोध को रोक। जब नादिर शाह ने बादशाह की बात सुनी तब लज्जित हो अमान की आज्ञा दी। नसक़्ची ने ज्योंही अमान की आवाज दी त्योंही संसार की लगी अग्निज्वला बुझ गई। उसकी सेना के सभी आज्ञाकारियों ने मार काट से हाथ उठा लिया। उस निष्ठुर ने अमान तब दिया, जब कलेजा रक्त हो चुका था और हृदय जल गया था। अब इस कष्टकर विषय का अंत कर, क्योंकि लेखनी इतना लिखते लिखते टुकड़े हो गई। जब नादिर ने मोतियों के कोष, सोने चांदी से भरे संदूक, हाथी, घोड़े, तलवार, खंजर और तख्त पाया तब चलने की तैयारी की। मुहम्मद शाह को सर्दारों सहित एकांत में बुलाकर गुप्त रूप से कहा कि कि हम अब ईरान को जाते हैं, तुम हिंदुस्तान

१---तारीखे-हिंदी में यह संख्या एक लाख लिखी गई है, पर बयाने-वक़ी में लिखा है कि कोतवाल से पूछने पर पता लगा कि लगभग बीस सहस्र मनुष्य मारे गए होंगे। (इलि० डाउ० जि० ८ पृ० ६४)

२---बयाने-वक़ी में भी मुहम्मद शाह की प्रार्थना पर क़त्ल का बंद होना लिखा गया है।

में रहो। पर धैर्य, प्रबंध और न्याय के साथ यहाँ की बादशाही करो। अपने देश से अब कभी बेखबर न रहना; क्योंकि इन लोगों ने अपनी करनी का फल देख लिया। शत्रु से सर्वदा सतर्क रहना कि बुद्धिमान् पुरुष के लिए इतना ही बहुत है। इस प्रकार उपदेश देकर जाने की इच्छा प्रकट की। जैसा नादिर ने चाहा, वैसे ही सुलतान ने बिदा कर दिया मानों नूह के तूफान की बिदाई हुई। सफ़र महीने के सातवें दिन[१] यह हुआ; सबने कहा कि नर्क और अग्नि में गया। थोड़े ही समय में यह चक्र-कारी वह्निया हिंदुस्तान से ईरान पहुँच गया। जिस जगह दुखियों का हाल देखने जाओ वहीं लाहौल कहना पड़ता था। हर एक गली, बाजार और घर में आपसवालों या दूसरों को बुलाया। तो किसी का दूध पीता-बच्चा था जिसके सिर को नादिर ने अपनी कटार से दो टुकड़े कर दिया था। किसी के न बाप है, न माँ है और किसी के घर बहिन नहीं है। किसी की स्त्री, बच्चा और माल नहीं है, अर्थात् कुल गृहस्थी नष्ट हो गई। किसी के कुल में कोई नहीं बचा और कोई अपने हाल पर यह शैर पढ़ता कि—

एक पल में, एक मिनट में और एक दम में मनुष्य का हाल उलट पुलट हो गया। कोई खाली घर में अकेला था, पर वह शयन घर बिलकुल खाली रह गया। इस कष्ट को घटा कर मत कह कि देखनेवालों के कलेजे में आह नहीं रह गई है। मुझ को इस वृत्तांत से कोई स्वार्थ नहीं है और न कहने ही से कोई लाभ है। पर भाइयों के कष्ट से हृदय का रक्त हो गया और नादिर ने कलेजे में घाव कर दिया।]

---

(१)—तजकिरा में भी यही तारीख दी गई है कि उस दिन दिल्ली के बाहर शालीमार बाग में जाकर नादिर शाह ने पड़ाव डाला था।

(३) रोला छंद के लक्षण*

[लेखक—बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर बी. ए. अयोध्या]

हमारे देखने में अब तक पिंगल शास्त्र के जो ऐसे ग्रंथ आए हैं, जिनमें रोला छंद का लक्षण मिलता है, उनमें 'प्राकृतपिङ्गलसूत्राणि' नामक ग्रंथ सबसे प्राचीन तथा प्रामाणिक है। इस शास्त्र के ज्ञाता उसको बहुत आदर की दृष्टि से देखते हैं। उक्त ग्रंथ में रोला छंद का यह लक्षण रोला छंद ही में लिखा है, जैसे कि प्रायः और छंदों के लक्षण भी उन्हीं छंदों में दिए हैं—

अथ रोला छंद।

पढ़म होइ चउवीस मत्त अन्तर गुरु जुत्ते।
पिङ्गल होंते ससणाअ तण रोला वुत्ते॥
एग्गाराहा हारा रोलाछन्दो गुज्जइ।
एक्के एक्के टुट्टइ अण्णो अण्णो वट्टइ॥७७॥

उक्त ग्रंथ पर चार टीकाएँ उपलब्ध हैं; पर खेद का विषय है कि इस लक्षण के अर्थ के विषय में चारों टीकाकारों के मतों में ऐक्य नहीं है। उनके मतों की आलोचना यहाँ विस्तार-भय से नहीं की जाती, और वस्तुतः इस लेख में उसकी कोई आवश्यकता भी नहीं है; क्योंकि उन लोगों का मुख्य मत-भेद इस छंद के प्रभेदों के विषय में है। प्रश्नकर्ता की जो मुख्य जिज्ञासा है, उसके विषय में किसी के मत से कोई संशय नहीं उपस्थित होता।

---

* काशी के साहित्य-विद्यालय ने ना० प्र० सभा से पूछा था कि रोला छंद में ग्यारह मात्राओं पर विरति होनी चाहिए या नहीं। सभा ने विद्यालय का वह पत्र श्रीयुत् बा० जगन्नाथदास रत्नाकर बी० ए० के पास भेज दिया था। रत्नाकर जी ने उस पत्र का जो उत्तर भेजा है, सर्वसाधारण की जानकारी के लिये वह ना० प्र० पत्रिका में प्रकाशित किया जाता है।—संपादक।

किसी टीकाकार ने कोई ऐसी बात नहीं लिखी है जिससे उसमें ग्यारह मात्राओं पर विरति की आवश्यकता प्रतीत होती हो। प्रत्युत् वंशीधर के इस वाक्य से कि "रोलायां चतुर्विंशतिर्मात्राः प्रति चरणं देया इत्यावश्यकं। तत्र प्रकारद्वयेन संभवति। लघुद्वययुक्तैकादशगुरुदानेन, यथेच्छं गुरुलघुदानेन वा।" इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि एक प्रकार के रोला में गुरु लघु का यथेच्छ आना उनको मान्य है। फिर वंशीधर ही ने यह भी लिखा है—"वक्ष्यमाण-काव्यच्छंदसश्चास्यायमेव भेदः यत्काव्ये लघुद्वयं जगणाद्यंतर्गतं मध्ये पतति, अत्र तु यथेच्छमिति।" इससे भी उनका यही सिद्धांत ठहरता है कि रोला छंद में लघु गुरु यथेच्छ रखे जाते हैं।

कृष्णदत्त ने अपनी व्याख्या में लिखा है—"रोलेति सर्वगुरोर्नामेति केचित्।" इससे भी स्पष्ट ही विदित होता है कि सर्व गुर्वात्मक भी रोला होता है, जिससे रोला छंद में ग्यारह मात्राओं पर विरति के नियम का निराकरण होता है; क्योंकि सर्वगुर्वात्मक रूप में, ग्यारह क्या, किसी विषम संख्या पर विरति हो ही नहीं सकती।

लक्ष्मीनाथ भट्ट ने अपनी व्याख्या में यह वाक्य लिखा है—"अत्र च यथा कथञ्चित्प्रतिचरणं चतुर्विंशतिः कलाः कर्तव्या इति"। इस वाक्य से भी ग्यारह मात्राओं पर विरति के नियम का न होना ही सिद्ध होता है।

इन सब बातों के अतिरिक्त लक्षण-रोला के तृतीय पाद से यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध होती है कि यदि ग्रंथकार को इस छंद में ग्यारह मात्राओं पर विरति का नियम करना इष्ट होता, तो वह लक्षण-रोला के तृतीय पाद में इष्ट नियम का भंग न करता।

ऊपर के लेख से विदित होता है कि प्राकृत-पिंगल के अनुसार रोला छंद में ग्यारह मात्राओं पर विरति का होना आवश्यक नहीं है।

अब वाणीभूषण नामक ग्रंथ के अनुसार उसका विचार किया जाता है। उक्त ग्रंथ में रोला छंद का यह लक्षण लिखा है—

रोलावृत्तमवेहि नागपिङ्गलकविभणितं ।
प्रतिपदमिह चतुरधिककला विंशति परिगणितम् ॥
एकादशमधि विरतिरखिलजनचित्ताहरणं ।
सुललितपद मदकारि विमलकवि-कण्ठाभरणम् ॥५९॥

इस लक्षण का अर्थ यह होता है—

[अब तुम] नागपिङ्गल कवि का कहा हुआ, अखिल जनों के चित्तों को हरनेवाला, सुललित पद से मद को करनेवाला (ओज उपजानेवाला) [तथा] कवियों का विमल कण्ठाभरण रोला छंद समझ लो। इसमें प्रति पद (प्रत्येक चरण) चौबीस कलाओं (मात्राओं) से परिगणित होता है और ग्यारह [मात्राओं] पर विरति होती है ।

ऊपर लिखे हुए लक्षण से एकाएक तो यही भासित होता है कि वाणीभूषण के कर्त्ता पण्डित दामोदर मिश्र रोला छंद में ग्यारह मात्राओं पर विरति होने का नियम बतलाते हैं, जो मत प्राकृत-पिंगल सूत्र के लक्षण से नहीं मिलता। पर दामोदर मिश्र ने अपने ग्रंथ में प्रायः सभी छंदों के लक्षणों में नागपति पिंगल की दुहाई दी है, जैसा कि उन्होंने इस छंद के लक्षण में भी किया है। उनके इस कहने से कि नागपिंगल कवि का कहा हुआ रोला छंद जानो, यह बात लक्षित होती है कि उनका मत पिंगल कवि के मत से पृथक् नहीं है। अतः इस भासमान पृथकता पर सूक्ष्म विचार करना उचित है।

प्रत्येक छंद में एक विशेष प्रकार की लय, अर्थात् गति की विशेषता होती है। छंद की लय क्या वस्तु है, इसका शब्दों के द्वारा कहना दुस्तर कार्य है। इसको अनुभवी लोगों के हृदय ही समझ सकते हैं। पर प्रत्येक छंद की लय किन किन नियमों का पालन

करने से बनी रह सकती है, इसका वर्णन सूक्ष्म विचार करके किया जा सकता है।

किसी नियत-संख्यक मात्राओं के समूह की लय में दो कारणों से अंतर पड़ जाता है—एक तो उक्त संख्या की भरती में लघु गुरु मात्राओं की संख्या के न्यूनाधिक्य से, और दूसरे लघु गुरु के आगे पीछे पड़ने के क्रम से। अतः किसी मात्रा-समूह के जितने रूप प्रस्तार से हो सकते हैं, उतने ही भेद उसकी लय में संभव हैं। पर इन भेदों में कुछ भेद ऐसे भी होते हैं जिनकी लयें आपस में ऐसी मिलती जुलती होती हैं कि वे रूप एक ही जाति की लय के माने जाते हैं और एक ही लय के अंतर्गत परिगणित होते हैं। इसी प्रकार कुछ भेद ऐसे भी होते हैं जो किसी अन्य लय के अंतर्गत आ जाते हैं। इसी कारण से एक एक लय के अंतर्गत आ जानेवाले भेदों का एक एक समूह नियत कर लिया गया है और ऐसे प्रत्येक समूह का एक नाम रख लिया गया है, जो एक एक मात्रिक छंद विशेष कहलाता है। अतः प्रत्येक मात्रिक छंद की मात्रा-संख्या के जितने रूप प्रस्तार से हो सकते हैं, उनमें से कुछ परिमित-संख्यक रूप एक छंद में आते हैं। प्रस्तार के रूपों में से कुछ रूप ऐसे भी होते हैं जिनकी लयें किसी अन्य रूप की लय से नहीं मिलतीं। अतः वे एक ही एक रूप के छंद माने जाते हैं और वर्ण छंदों में परिगणित होते हैं।

ऊपर कहे हुए सिद्धान्त के अनुसार चौबीस मात्राओं के समूह के जो ७५०२५ रूप होते हैं, वास्तव में उन सबकी लयों में कुछ न कुछ भेद तो अवश्य होता है, पर उनमें से कुछ रूपों की लयों में ऐसा सूक्ष्म अंतर होता है कि वे एक ही जाति की लय के माने जाते हैं और एक ही समूह में परिगणित होते हैं; और इसी प्रकार कुछ रूप किसी अन्य समूह में समझे जाते हैं। इस प्रकार से चौबीस मात्राओं के रूपों के अंतर्गत अनेक समूह हो जाते हैं, जो कि भिन्न भिन्न छंदों

के नामों से कहे जाते हैं। उन्हीं समूहों में से एक समूह का नाम रोला छंद है, जिसमें चौबीस मात्राओं के ७५०२५ रूपों में से कुछ परिमित रूप आते हैं।

चौबीस मात्राओं के रूपों के अंतर्गत जितने रूप रोला छंद में पिंगलाचार्य के मत से आ सकते हैं, उनकी लयों में यद्यपि एक प्रकार का साम्य अवश्य होता है, जिसके कारण वे सब एक ही समूह में परिगणित होते हैं, तथापि प्रत्येक रूप की लय में कुछ विशेषता भी अवश्य ही रहती है, जिसके कारण किसी रूप की लय शिथिल, किसी की ओजस्विनी, किसी की सामान्य और किसी की विशेष रोचक होती है। रोला छंद के अंतर्गत जो रूप आते हैं, उनमें जितने रूपों में ग्यारह मात्राओं पर विरति होती है, उनकी लय कुछ विशेष मनोहारिणी, ओजवर्धिनी एवं रोचक मानी जाती है।

पिंगलाचार्य्य के मतानुसार जितने रूप रोला छंद में परिगणित होने के योग्य हैं, उनमें से जो विशेष मनोहर, ओजस्वी तथा कवियों के कंठों में अधिक चढ़े हुए हैं, उन्हीं को अपना लक्ष्य बनाकर पंडित दामोदर मिश्र ने ऊपर उद्धृत किया हुआ लक्षण लिखा है; और इसी कारण "अखिलजनचित्ताहरणं," "सुललितपदमदकारि," एवं "विमलकविकण्ठाभरणं," अपने लक्ष्य छंद के विशेषण रख दिए हैं। अतः उनके लक्षण का अभिप्राय यह होता है कि नागपिंगल कवि के निर्दिष्ट रोला छंद के भेदों के समूह में से जो रूप-समूह अखिल जनों के चित्तों को हरनेवाला, अपने सुललित पदों से ओज उत्पन्न करनेवाला एवं कवियों के कंठों का विमल आभूषण है, उसको तुम इस लक्षण से जानो कि उसका प्रति पद चौबीस मात्राओं से परिगणित होता है और उसमें ग्यारह मात्राओं पर विरति होती है।

इस प्रकार से अर्थ करने पर पिंगलाचार्य्य तथा पंडित दामोदर मिश्र के मतों में भेद नहीं रह जाता। इसके अतिरिक्त यह भी बात

ध्यान देने की है कि यद्यपि एक आचार्य्य को अन्य आचार्य्य के मत से भिन्न मत स्थापित करने का अधिकार है, पर यह अधिकार किसी को नहीं है कि वह कहे तो यह कि मैं अमुक आचार्य्य का कहा हुआ मत कहता हूँ, पर कहे उसके मत से भिन्न ही मत। अतः जो अर्थ हमने दामोदर मिश्र के लक्षण का किया है, यदि वह उनको अभीष्ट नहीं था तो यह मानना पड़ेगा कि उन्होंने दुहाई तो नागपिंगल कवि के मत की दी, पर अपने लक्षण में वस्तुतः भिन्न ही मत स्थापित किया। पर यह बात किसी माननीय तथा श्रेष्ठ पंडित के विषय में, किसी विशेष कारण के बिना, मानना शिष्टाचार के सर्वथा विरुद्ध है। अतः दामोदर मिश्र के लक्षण के विषय में यही मानना समीचीन है कि वह लक्षण रोला छंदों में से एक विशेष प्रकार के समूह मात्र का लक्ष्य करके दिया गया है।

संस्कृत के अन्य प्रसिद्ध पिंगल ग्रंथों जैसे श्रुतबोध, पिंगलसूत्र, वृत्त-रत्नाकर, छंदोमंजरी इत्यादि में रोला छंद का लक्षण नहीं दिया है। भाषा के पिंगल ग्रंथों में सुखदेव कवि का वृत्तविचार नामक ग्रंथ बहुत प्रामाणिक माना जाता है। वह संवत् १७२८ का बना है। उसमें रोला छंद का यह लक्षण मिलता है—

बारह गुरु जहँ होय सु कवि सुखदेव सु आछे।
घटै सुदीरघ एकु बढ़ै द्विकला सों पाछे॥
सकल कला चौबीस होय गुरु अंतहि आवै।
पिंगलपति यों कहै छंद रोला सु कहावै॥

इस लक्षण में स्पष्ट ही कहा है कि रोला छंद के पहले भेद में बारह गुरु होते हैं, और फिर भेदांतरों में एक एक गुरु घटता जाता है और उसके स्थान पर दो दो लघु बढ़ते जाते हैं। इस लक्षण के अनुसार रोला छंद में ग्यारह मात्राओं पर विरति का होना संभव ही नहीं है; क्योंकि चौबीसों मात्राओं के गुरु रूप से आने पर

ग्यारह क्या, किसी विषम-संख्यक मात्राओं पर विरति हो ही नहीं सकती।

भिखारीदास ने छंदार्णव पिंगल में चौबीस मात्राओं के छंदों में रोला छंद के विषय में केवल इतना ही लिखा है—

"अनियम ह्वैहै रोला"

इससे रोला में किसी विशेष स्थान पर विरति के नियम का निराकरण होता है। जो उदाहरण उक्त छंद का उन्होंने दिया है, उसमें ग्यारह मात्राओं पर विरति होने के नियम का निर्वाह भी नहीं किया है।

रबिछबि देखत घूघू घुसत जहाँ तहँ बागत।
कोकनि कौं ताही सों अधिक हियौ अनुरागत॥
त्यौं कारे कान्हहिं लखि मनु न तिहारौ पागत।
हम कौं तौ वाही तैं जगत उज्यारौ लागत॥

ज्ञात होता है कि वाणीभूषण में रोला छंद के लक्षण में जो विशेषण प्रयुक्त हुए हैं, उनके मुख्य आशय पर बिना ध्यान दिए ही संस्कृत के किसी किसी पिंगलकार ने वही लक्षण सामान्य रोला छंद का लिख दिया होगा; क्योंकि संस्कृत में रोला छंद का उपयोग कदाचित् ही होता है। अतः संस्कृत के कवियों से उक्त छंद के यथार्थ स्वरूप-निरूपण में उपेक्षा संभव है, और उनके ऐसे लक्षणों से भिखारीदास जी के समय में भी रोला छंद की ग्यारहवीं मात्रा पर विरति के होने को आवश्यकता के विषय में मतभेद हो गया होगा। इसी भ्रम को मिटाने के निमित्त उन्होंने अपने उदारहण में ग्यारह मात्राओं पर विरति का निर्वाह नहीं किया है।

ऊपर जो बातें लिखी गई हैं, उनका सारांश यही निकलता है कि रोला छंद में ग्यारह मात्राओं पर विरति होना आवश्यक नहीं है, पर यदि हो तो अच्छी बात है।

---

(४) संस्कृत साहित्य की विदुषी स्त्रियाँ

[लेखक—पं० बलदेव उपाध्याय, एम. ए., काशी]

प्रतिभा लिङ्गविशेष की अपेक्षा नहीं करती। काव्यप्रतिभा का सम्बन्ध आत्मा के साथ रहता है; स्त्री या पुरुष के विभाग से उसे कुछ काम नहीं। पुरुष यदि दावा करे कि कविता जैसी ललित कलाओं का सुन्दर अंकुर उसी के हृदय में उत्पन्न होता है, और उसकी उर्वरा शक्ति से वह लहलहाने लगता है, तो वह सदा झूठा ही समझा जायगा। सच तो यह है कि कविता, संगीत, चित्रकला आदि मधुर हृदयहारी कलाओं का बीज नारियों के सहानुभूतिपूर्ण, रस से शराबोर हृदय में पुरुषों के कठोर हृदय की अपेक्षा अपने उगने के लिये अधिक सहकारी सामग्री पाता है और वहीं यह सदा हरा भरा भी पाया जाता है। नवीन पश्चिमी संसार के उदाहरणों को छोड़ देने पर भी यदि अभिनव भारत के ही दृष्टान्तों पर दृष्टिपात किया जाय, तो स्त्रियों में प्रतिभा की कमी नहीं देख पड़ती। आज कल जब कि स्त्रियों में शिक्षा का बहुत ही कम प्रचार है, ऐसी दशा देखने को मिलती है, तो प्राचीन भारत में, जब कि शिक्षा सार्वजनिक थी, स्त्री-कवियों के अस्तित्व से हमें चकित नहीं होना चाहिए।

सर्व-पुरातन ग्रन्थरत्न ऋग्वेद में ही अनेक स्त्रियों की बनाई हुई ऋचाएँ संगृहीत हैं जिनके देखने से उनके उन्नत विचारों का पता भली भाँति लगता है। कविता की दृष्टि से भी ऋचाएँ उच्च कोटि की मानी जाती हैं। इन सबका दिग्दर्शन फिर कराया जायगा। उन स्त्री कवियों की कविता का स्वाद भी आज पाठकों को न चखाया जायगा जिन्होंने सांसारिक भोग विलास को लात मारकर बौद्ध धर्म की

भिक्षुणी बन शान्ति को ही अपने जीवन का अन्तिम लक्ष्य बनाया था तथा जिनकी कविताएँ 'समग्र थेरी गाथा' में संगृहीत हैं। आज उन्हीं स्त्री कवियों की चर्चा की जायगी, जिनका सम्बन्ध उत्तरवर्ती संस्कृत साहित्य से है। परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इन कवियों की रचना की कौन कहे, दुर्दैव ने इनके स्मरणीय नाम तक को भी भूतकाल के विस्मृति-गर्त में सदा के लिये रख दिया है। प्राचीन कवियों के प्रशंसात्मक श्लोकों से ही किसी किसी के नाम जाने जाते हैं; तथा सूक्ति संग्रहों में संगृहीत कविताओं से ही इनकी उत्कृष्ट प्रतिभा का पता चलता है। जिन कवियों की अधिक कविताएँ मिलती हैं, स्थानाभाव के कारण उनमें से कतिपय उत्तम ही यहाँ चुनकर रक्खी गई हैं। परन्तु कुछ की रचनाएँ तो केवल दो चार श्लोक ही हैं। इस स्थान पर उनके उपलब्ध समग्र पद्य उद्धृत कर दिए गए हैं।

विज्जका

संस्कृत साहित्य में प्रतिभाशालिनी कवयित्री 'विज्जका' का खूब नाम है। उनकी रसभावमयी कविता का आस्वादन कर सहृदय भावुकों के चित्तसागर में आनन्द की लहरी अठखेलियाँ करने लगती है। वास्तव में स्त्री होकर इतनी मधुरिमामयी पदावली की रचना करना कोई हँसी खेल की बात नहीं; इससे विज्जका की उन्नत प्रतिभा का पता सहज ही में आलोचकों को लगता है। परंतु दुःख तो इस बात का है कि इनकी समग्र रचनाओं से सहृदयगण सदा के लिये वञ्चित हो गए हैं; क्योंकि इनके किसी काव्य ग्रन्थ का पता अभी तक कुछ भी नहीं लगा है और न लगने की आशा है। सूक्ति ग्रन्थों में उद्धृत कविताएँ ही इनकी अवशिष्ट रचनाएँ हैं जो काल के भयङ्कर प्रहार को सहकर भी किसी प्रकार बच सकी हैं। इस प्रतिभा-सम्पन्न

नारी-कवि के जीवन की घटनाएँ भी अभेद्य अन्धकार के अज्ञात परदे में छिपी हुई हैं, जिससे उन्हें निकालकर सर्वसाधारण के सामने उपस्थित करना एक अत्यंत दु:साध्य कार्य प्रतीत होता है।

इनका नाम कहीं विज्जका या विज्जाका मिलता है और कहीं विद्या। इनका शुद्ध नाम 'विज्जका' ही प्रतीत होता है जिसका संस्कृतीकृत रूप 'विद्या' है। शार्ङ्गधर पद्धति के एक पद्य में 'विजका' ने महाकवि दण्डी को डाँट बताई है। वह सर्व-प्रसिद्ध पद्य यह है:—

नीलोत्पलदलश्यामां विज्जकां मामजानता।
वृथैव दण्डिना प्रोक्तं "सर्वशुक्ला सरस्वती"॥

पद्य का चतुर्थ चरण काव्यादर्श के मंगलाचरण श्लोक का अंतिम पाद है। विज्जका का कहना है कि नील कमल के पत्ते के समान श्याम रंगवाली मुझे बिना जाने ही दण्डी ने व्यर्थ ही सरस्वती को सर्वशुक्ला कह डाला है। इस गर्वोक्ति से विज्जका के असाधारण पाण्डित्य का पता लगता है। इससे इतनी ही ऐतिहासिक बात निकलती है कि 'विज्जका' के आविर्भाव का समय 'दण्डी' के कुछ इधर है; परंतु कितना उतरकर है, इसे निश्चय करने के यथेष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

विज्जका के कई पद्यों को संस्कृत आलंकारिकों ने उदाहरण-स्वरूप अपने ग्रंथों में उद्धृत किया है। मम्मटाचार्य ने अपने 'शब्द-व्यापार विचार' में इनके 'दृष्टिं हे प्रतिवेशिनि क्षणमिहाप्यस्मद्गृहे दास्यसि' (नं० ५०० कवीन्द्र वचन समुच्चय) और 'धन्यासि या कथयति' (२९८ कवीन्द्र०) को उद्धृत किया है। दूसरा पद्य काव्य-प्रकाश के चतुर्थ उल्लास में अर्थमूलक वस्तु प्रतिपाद्य अलंकार ध्वनि के उदाहरण में दिया गया है। पहला पद्य धनिक के 'दशरूपावलोक' तथा मुकुल-भट्ट के 'अभिधावृत्ति मात्रिका' में उद्धृत किया गया है। भट्ट मुकुल का समय लगभग ९२५ ई० है। अतएव पूर्वोक्त पद्य की रचयित्री का समय अनुमान से ८५० ई० कहा जा सकता है। विज्जका

का आविर्भाव काल दण्डी तथा मुकुल भट्ट के बीच का काल (७१० ई०—८५० ई०) माना जा सकता है।

कुछ विद्वानों का यह अनुमान है कि 'विज्जका' तथा कार्णाटी 'विजया', जिसकी वैदर्भी रीति की प्रशंसा राजशेखर ने कालिदास से उपमा देकर खूब की है,[1] दोनों एक ही व्यक्ति हैं। पुलकेशी द्वितीय के ज्येष्ठ पुत्र चन्द्रादित्य की महारानी 'विजयभट्टारिका' के साथ 'विजया' की एकता नाम-साम्य की भित्ति पर मानकर इनका समय ६६० ई० माना गया है[2]; क्योंकि विजयभट्टारिका के इसी समय के लेख पाए जाते हैं।[3] अतएव वे 'विज्जका' को भी सप्तम शताब्दी में बतलाते हैं।

उन विद्वानों की यह पूर्वोक्त सम्मति उतनी अच्छी नहीं जँचती। कर्नाट देश की रहनेवाली 'विजया' सम्भवतः महारानी विजया हो सकती है; क्योंकि इसके पोषक प्रमाण हैं। 'चन्द्रादित्य' सम्पूर्ण महाराष्ट्र

---

१. सरस्वतीव कार्णाटी विजयाङ्का जयत्यसौ।
या विदर्भ गिरां वासः कालिदासादनन्तरम् ॥ (शार्ङ्ग० १८४)

इससे 'विजया' का कर्णाट देशीय होना सिद्ध होता है। इस उल्लेख के अतिरिक्त इस गर्वोक्तिमय पद्य की लेखिका भी यही जान पड़ती है:—

एकोऽभून्नलिनात् ततश्च पुलिनात् वल्मीकतश्चापरे
ते सर्वे कवयो भवन्ति गुरवस्तेभ्यो नमस्कुर्महे।
अर्वाञ्चो यदि गद्यपद्यरचनैश्चेतश्चमत्कुर्वते
तेषां मूर्ध्नि ददामि नामचरणं **कर्णाटराजप्रिया** ॥

(कर्पूर म०, काव्यमाला, पृ० ५ भूमिका)

२. काणे—साहित्यदर्पण की भूमिका पृ० ४१; डाक्टर एस. के. डे, अलंकार शास्त्र का इतिहास।

३. Nerur plates and Kocherein plates of the Queen in Indian Antiquary Vol. VII & VIII.

का राजा था, कर्नाटक उसकी राज्य-सीमा के भीतर ही था। अतएव 'महारानी विजयभट्टारिका' के कर्नाटदेशीय होने में कोई विशेष सन्देह नहीं है। दूसरे भट्टारिका शब्द तो केवल उपाधिसूचक है। जिस प्रकार महाराज को 'भट्टारक' कहा जाता था, उसी प्रकार राज-महिषी भी भट्टारिका कही जाती थी। अतएव उनका भी नाम 'विजया' ही हो सकता है। इस एकीकरण में अधिक सन्देह नहीं मालूम पड़ता। परंतु ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में 'विजया' को 'विज्जका' का ही नामान्तर मानना हमारी सम्मति में उचित नहीं प्रतीत होता। एक ही प्रमाण ऐसा है जिससे 'विज्जका' और कार्नाटी 'विजया' की एकता सिद्ध हो सकती है। विज्जका ने स्वयं ही अपने को उक्त उद्धृत पद्य में 'सरस्वती' माना है तथा विजया के विषय में राजशेखर ने भी 'सरस्वतीव कार्णाटी' कहा है। अतः काव्य-प्रतिभा में दोनों ही सरस्वती के समान मानी गई हैं। इस वर्णन से सम्भव है, दोनों एक ही व्यक्ति हों। अतएव 'विज्जका' का समय ७वीं शताब्दी में मानना ठीक नहीं। ७वीं शताब्दी के अन्त में होनेवाले महाकवि दण्डी के पूर्वोक्त उद्देख से भी इसमें सन्देह प्रकट किया जा सकता है। 'विज्जका' के विषय में इतना ही कहना अवशिष्ट है कि इनका जन्म सम्भवतः दक्षिण देश में हुआ था। इससे अधिक इनके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं।

इनकी रसभावमयी कविता की चर्चा की जा चुकी है। अधिकांश कविताओं में शृङ्गार रस का ही प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है; भाव का सौष्ठव देखते ही बनता है। स्वभावोक्ति की भी मात्रा खूब है। जरा इनके काव्य रस का आस्वादन कीजिए।

विज्जका सहृदय भावुक का वर्णन कितने मार्मिक तथा सच्चे शब्दों में कर रही हैं:—

कवेरभिप्रायमशब्दगोचरं स्फुरन्तमार्द्रेषु पदेषु केवलम्।
वदद्भिरङ्गैः कृतरोम विक्रियैर्जनस्यतूष्णीमवतोऽयमञ्जलिः॥

सच्चा कवि अपने भावों को अभिधा के द्वारा कभी प्रकट नहीं करता। यदि बात साफ तौर से कह डालें तो उसमें मजा ही क्या आवेगा? वह केवल व्यंजना की सहायता से उन्हें प्रकट करता है। शब्दों के द्वारा अभिप्राय की अभिव्यक्ति नहीं होती, वरन् कुछ रसभरे मनोहर पदों में यह भाव झलकता रहता है। ऐसे महाकवि का सच्चा आस्वादक किसे कह सकते हैं? उर्दू कविता के भावुकों की भाँति केवल भावावेश में 'वाह वाह' कहकर ही अपनी सहृदयता का पता देना संस्कृत कविता के सच्चे रसिक का काम नहीं। कवि के गूढ़ व्यञ्जना-द्योतित अभिप्राय को समझकर जो रसिक शब्दों के द्वारा काव्यानन्द की सूचना नहीं देता, वरन् चुप रहकर भी जिसके रोमाञ्चित अवयव हृदय की आनन्द लहरी का पता साफ शब्दों में बतलाते हैं, वही सच्चा रसिक है। ऐसे सहृदय शिरोमणि को मैं प्रणाम करती हूँ। रसिक की क्या ही सच्ची परिभाषा है। सारांश यह है कि जिस प्रकार सच्चे कवि का कार्य ध्वनि के द्वारा भावबोधन कराना है, उसी भाँति सच्चे भावुक का कार्य व्यंजनाके द्वारा ही उसकी सराहना करना है।

> कोषः स्फीततरः स्थितानि परितः पत्राणि दुर्गं जलम्,
> मैत्रं मण्डलमुज्वलं चिरमधो नीतास्तथा कण्टकाः
> इत्याकृष्टशिलीमुखेन रचनां कृत्वा तदप्यद्भुतं
> यत्पद्मेण जिगीषुणापि न जितं मुग्धे ! त्वदीयं मुखम्।

हे मुग्धे! कमल ने बड़ी बड़ी तैयारियाँ करके तुम्हारे मुख पर धावा बाल दिया है। परंतु फल क्या हुआ? कुछ भी नहीं। अपना विषण्ण वदन लेकर चुपचाप बैठ गया। लिखा हुआ कोश उसका खजाना (कोष) है; चारों ओर फैले हुए पत्ते पत्र (वाहन) हैं; जल दुर्गम (किला) है; उज्वल मैत्रमण्डल (सूर्य मण्डल) उसका मित्र है। कण्टकों को भी उसने नीचे कर दिया है। इतना ही नहीं, उसने शिलीमुख

(बाण तथा भ्रमर) को भी खींच रखा है। परंतु हजरत से इतने सामान के रहते हुए भी कुछ नहीं हो सका। होता भी क्या खाक ! आज तक इस मुख को किसी ने जीता है कि वे जीतने चले हैं ! कमल-विजयी मुख की प्रशंसा कितनी सुन्दर है !

केनात्र चम्पकतरो बत रोपितोऽसि,
कुग्रामपामरजनान्तिकवाटिकायाम् ।
यत्र प्ररूढनवशाकविवृद्धिलोभान्
गोभग्नवाटघटनोचितपल्लवोऽसि ॥

हे चम्पक के पेड़ ! तुम्हें किसने इस वाटिका में रोपा है ? जानते नहीं हो, इसके आसपास दुष्ट जनों की बस्ती है, जो इस गरज से कि उगे हुए साग—साधारण तरकारी—और भी बढ़ते जायँ, तुम्हारे पल्लव की गाय से तोड़ी हुई चहार-दीवारी की तरह बुरी दशा कर डालेंगे ।

विलासमसृणोल्लसन्मुसललोलदोः कन्दली-
परस्परपरिस्खलद्वलयनिःस्वनोद्बन्धुराः ।
लसन्ति कलहुंकृतिप्रसभकम्पितोरः स्थल-
त्रुटद्गमकसंकुलाः कलमकण्डिनीगीतयः ॥

धान कूटने का क्या ही सुन्दर स्वाभाविक वर्णन है ! स्त्रियाँ चिकने तथा सुन्दर मूसलों से धान कूट रही हैं। इस कार्य में उनके चञ्चल हाथों के चलने से वलय आपस में टकराते हैं जिससे बहुत ही रमणीय ध्वनि होती है। वे बीच में मनोहर 'हुंकार' कर रही हैं; उनके उरस्थल अत्यन्त कम्पित हो रहे हैं। गमकों—तालस्वरों-से युक्त इन धान कूटनेवालियों के गीत कैसे मनोहर जान पड़ते हैं। श्लोक में स्वभावोक्ति अलंकार की अनुपम छटा है !

गते प्रेमाबन्धे हृदयबहुमानेऽपि गलिते
निवृत्ते सद्भावे जन इव जने गच्छति पुरः ।

तथा चैवोत्प्रेक्ष्य प्रियसखि गतान्ताँश्च दिवसान्
न जाने को हेतुर्दलति शतधा यन्न हृदयम् ॥

इसमें विरहिणी की मर्म भरी बातें कितने साफ शब्दों में बताई गई हैं। विरहिणी अपनी प्यारी सखी से कह रही है कि हे सखि, जब प्रेम का बन्धन ढीला पड़ गया, हृदय से उसके लिये अत्यंत सम्मान हट गया, जब सद्भाव की इति श्री हो गई, जब वह मेरा प्राण प्यारा साधारण स्नेह-रहित मनुष्य की भाँति चला गया और इतने दिन भी बीत गए, परंतु उसने मेरी कोई खोज खबर नहीं ली, भला कहो तो सही कि तब किस सुख की आशा से यह हृदय अभी ठहरा हुआ है ? टुकड़े टुकड़े नहीं हो जाता ? ऐसी दशा में बस मरणं श्रेयः ।

पिय सखि ! विपद्दण्ड प्रान्तप्रपातपरम्परा-
परिचयचले चिन्ताचक्रे निधाय विधिः खलः ।
मृदमिव बलात् पिण्डीकृत्य प्रगल्भकुलालवत्
भ्रमयति मनो, नो जानीमः किमत्र विधास्यति ॥

विपद की मारी हुई नायिका सखी से कह रही है:—मेरी प्यारी सखी चतुर कुम्हार के समान ब्रह्मा के चिन्तारूपी चाक पर मिट्टी के लोंदे के समान मेरे मन को बलात् रखकर विपत्ति के डंडे के कोने से जोरों से घुमा रहा है। जिस प्रकार कुलाल मिट्टी के लोंदे को चाक पर पहले खूब घुमाता है, पीछे जो चाहता है, बना डालता है, उसी प्रकार ब्रह्मा भी चिन्ता पर मेरे मन को घुमा रहा है। परन्तु न मालूम अब इसे क्या बना डालेगा ! जानूँ तो कैसे जानूँ। विपत्ति में चिन्ता-ग्रस्त अबला की दयनीय दशा का कैसा सुन्दर चित्रण है ! साङ्गरूपक की छटा भी देखते ही बनती है।

विरम विफलायासादस्मादुरध्यवसायतो
विपदि महतां धैर्यभ्रंशं यदीक्षितुमीहसे ।

अयि जड़ विधे ! कल्याणाय व्यपेतनिजक्रमा;
कुलशिखरिणी क्षुद्रां नैते न वा जलराशयः ॥

कोई कवि सज्जनों पर विपत्ति ढानेवाले ब्रह्मा को चेतावनी दे रहा है—हे ब्रह्मा, मनस्वी सज्जनों पर आफत गिराने का परिश्रम क्यों कर रहे हो ? यह परिश्रम बिल्कुल ही व्यर्थ होगा। इससे इनका धैर्य कभी टूट नहीं सकता। क्या ये लोग क्षुद्र कुल-पर्वत हैं या जल-राशि हैं जो प्रलय काल में अपने कार्यक्रम को बिल्कुल ही छोड़ देते हैं ? कल्पांत में डिगनेवाले कुल-पर्वतों से तथा अपनी मर्यादा का उल्लंघन करनेवाले समुद्रों से आफत में भी धैर्य न छोड़नेवाली महा-पुरुषों की तुलना क्या कभी की जा सकती है ?

माद्यद्दिग्गजदानलिप्तकरटप्रक्षालनक्षोभिताः
कोऽन्नः सीम्नि विचेरुरप्रतिहता यस्योर्मयो निर्मलाः ।
कष्टंभाग्य विपर्ययेण सरसः कल्पांतरस्थायिन
स्तस्याप्येक बक प्रचार कलुषं कालेन जातं जलम् ॥

तालाब की दशा में कैसा विचित्र परिवर्तन हुआ है ! मतवाले दिग्गजों के मद से लिप्त गण्डस्थलों के प्रक्षालन से क्षुब्ध होकर जिसकी निर्मल तरंगें बिना रोक टोक के आकाश की सीमा में विचरण करती थीं, कल्पान्तर स्थायी उसी तालाब का जल अब एक ही बगुले के चलने से कलुषित हो गया है। बड़े कष्ट की बात है ! भाग्य के फेर से ही ऐसे बड़े तालाब की ऐसी दुर्दशा हो गई। क्या किया जाय ! दैव सबसे बलवान् है ।

सुभद्रा

'सुभद्रा' नामक कवयित्री की प्रसिद्धि उतनी नहीं है;क्योंकि इनकी रचनाओं का कुछ भी पता नहीं लगता। वल्लभदेव की सुभाषिता-वलि में इनका केवल एक ही पद्य उद्धृत किया गया है, और वही इनकी अवशिष्ट रचना है। 'सुभद्रा' ने अवश्य ही अनेक कविताओं

की रचना की होगी; नहीं तो राजशेखर को इनके कविता-चातुर्य के वर्णन का अवसर ही कहाँ मिलता। राजशेखर ने स्पष्ट शब्दों में इनकी कविता को मनोमोहिनी बतलाया है:—

पार्थस्य मनसि स्थानं लेभे खलु सुभद्रया।
कवीनां च वचोवृत्तिचातुर्येण सुभद्रया ॥

(सूक्तिमुक्तावली)

जिस प्रकार सुभद्रा ने अर्जुन के मन में अपने सौन्दर्य के कारण स्थान पाया था, उसी प्रकार सुभद्रा ने भी अपनी रचनाओं की चतुरता से कवियों के मन में स्थान पाया है। इस उल्लेख से स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि 'सुभद्रा' दसवीं शताब्दी के पहले हुई थी। इनकी जीवनी भी बिल्कुल अज्ञात है।

अपने पद्य में इन्होंने स्नेह से होनेवाले दुष्परिणाम की बात बतलाई है:—

दुग्धं च यत्तदनु यत्कथितं ततोनु, माधुर्यमस्य हृत्युन्मथितं च वेगात्।
गातं पुन घृतकृते नवनीत वृत्ति स्नेहो निबन्धनमनर्थ परम्पराणाम् ॥

स्नेह ने बिचारे दूध की कैसी दुर्दशा कर डाली है। स्नेह—घृत-के ही लिये बिचारा दूध गरम किया जाता है—खूब औंटा जाता है। काँजी डालकर उसका मीठापन भी दूर किया जाता है; फिर बड़े जोरों से मथा जाता है; तब घी के ही लिये इसे मक्खन का रूप धारण करना पड़ता है। बताइए तो सही, बिचारे दूध पर इतनी आफत क्यों ? केवल स्नेह (घी तथा प्रेम) के ही लिये। वास्तव में स्नेह मनुष्य के हज़ारों दुःखों का मूल है। स्नेह की इस अनर्थकारिता के विषय में किसी कवि का यह प्राचीन श्लोक भी सुभद्रा के सुभग पद्य की सत्यता का ही प्रतिपादन कर रहा है:—

स्नेहं परित्यज्य निपीय धूमं कान्ताकचा मोक्षपथं प्रपन्नाः।
नितम्बसङ्गात्पुनरेव बद्धाः अहो दुरन्ता विषयेषु सक्तिः ॥

फल्गुहस्तिनी

इनका भी नाम संस्कृत साहित्य में अधिक नहीं। कविता की अनुपलब्धि ही इसका मूल कारण प्रतीत होती है। सुभाषितावलि में दो पद्य उद्धृत किए गए हैं जिनमें पहला पद्य (सृजति तावदशेष गुणाकरं) भर्तृहरि के नीतिशतक में भी पाया जाता है; अतएव उसके रचयिता के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। सूक्ति-संग्रह-कर्ताओं की भूल से ऐसा बहुधा देखा गया है कि किसी का पद्य किसी दूसरे के माथे मढ़ा हुआ रहता है। दूसरा पद शार्ङ्गधर पद्धति में भी पाया जाता है। पद्य यह है:—

त्रिनयनजटावल्लीपुष्पं मनोभवकार्मुकं
ग्रहकिसलयं सन्ध्या नारी नितम्बनखक्षतम्।
तिमिरभिदुरं व्योम्नः शृंगं निशावदनस्मितं
प्रतिपदि नवस्येन्दोर्बिम्बं सुखोदयमस्तु वः॥

आकाश में प्रतिपद्चन्द्र का उदय हुआ है। चन्द के वर्णन में कितने मनोरम रूपकों की उद्भावना की गई है। यह शिव की जटारूपी लता का फूल है; काम देव का टेढ़ा धनुष है; ग्रहों का नवीन पल्लव है; संध्या रूपी नारी के नितम्ब पर लाल नख क्षत है (उदय के समय में चन्द्रमा में कुछ लालिमा रहती है और क्षत भी लाल होता है), अन्धकार को नष्ट करनेवाला आकाश का शिखर है, निशारूपी नायिका के वदन की कोमल मुसकुराहट है। ऐसे मनोरम चन्द्र का उदय तुम्हारे सुख के लिये हो। इस पद्य में रूपक की छटा कितनी सुहावनी है!

इससे स्पष्ट है कि फल्गुहस्तिनी में उस ऊँची प्रतिभा की कमी नहीं थी जो सच्चे कवि में होनी चाहिए।

मोरिका

'मोरिका' के नाम के सुभाषितावलि और शार्ङ्गधर पद्धति दोनों संग्रहों में कुल चार पद्य मिलते हैं। इन पद्यों के सिवाय न तो इनके किसी काव्य का ही पता चलता है और न किसी ऐतिहासिक वृत्तान्त का। शार्ङ्गधर में उद्धृत कवि धनदेव की उक्ति में स्त्री कवियों में 'मोरिका' का भी नाम आया है:—

शिला विज्जा मारुला मोरिकाद्याः
काव्यं कर्तुं सन्ति विज्ञाः स्त्रियोऽपि ।
विद्यां वेत्तुं वादिनो निर्विजेतुं
विश्वं वक्तुं यः प्रवीणः स वन्द्यः ॥

इससे स्पष्ट सूचित होता है 'मोरिका' काव्य-रचना में बड़ी प्रवीण थी। यही उल्लेख इनके विषय में ज्ञात इतिहास का सार है। इनकी कविता साधारण तथा अच्छी है। सब पद्यों में शृंगार रस ही लबालब भरा है।

यामीत्यध्यवसाय एव हृदये बध्नातु नामास्पदं
वक्तुं प्राणसमा समक्षमघृणो नेत्थं कथं पार्यते ।
उक्तं नाम तथापि निर्भरगलद्बाष्पं प्रियायाः मुखं
दृष्ट्वापि प्रवसन्त्यहो धनलवप्राप्तिस्पृहाः मादृशाम् (? मादृशाः)

कोई विदेशी कह रहा है कि पहले तो जाने का अध्यवसाय ही हृदय में किसी तरह स्थान पाता है। परन्तु अपनी प्राणप्यारी के सामने भला ऐसी बात कैसे कही जा सकती है। यदि कह दूँ तो प्रिया की आँखों से वियोग के कारण आँसुओं की झड़ी बँध जाती है। परन्तु क्या करूँ ? उसे भी देखकर हमारे जैसे निर्धन लोग पर-देश में धन कमाने की इच्छा से आते हैं। क्या किया जाय, लाचारी है। नहीं तो किसी प्रकार अपनी प्रिया को दुःख-सागर में छोड़कर आना न्याय-प्राप्त नहीं।

लिखति न गणयति रेखा निर्भरबाल्याम्बु धौतगण्डतला
अवधिरिव सावसानं माभूदिति शङ्किता बाला ।

पति परदेश से कुछ ही दिनों के लिये घर आया है। बाला नायिका की आँखों से आसुओं की धारा बह रही है जिससे उसका कपोल बिल्कुल धुल गया है। वह अवधि के दिनों की रेखाएँ लिखती है जरूर, परन्तु गिनती नहीं। डरती है कि कहीं ऐसा न हो कि अवधि पूरी हो जाय और प्रिय पति के जाने का दुस्सह दुःख अभी उपस्थित हो जाय। पद्य में नायिका के कोमल हृदय का पता बड़ी खूबी के साथ दिया गया है।

प्रियतमस्त्वमिमामनघार्हसि, प्रियतमा च भवन्तमिहार्हति ।
नहि विभाति निशारहितः शशी, नच विभाति निशापि विनेन्दुना ।

दूती नायक को समझा रही है कि हे प्रिय, तुम इस नायिका के योग्य हो और यह भी तुम्हारे ही योग्य है। देखो, बिना रात्रि के चन्द्रमा की शोभा नहीं होती और रात भी चन्द्रमा के बिना कभी नहीं सोहती।

नायक परदेश जाने को तैयार है। इसकी सूचना मिलते ही नायिका की कैसी करुणाजनक दशा उपस्थित हो जाती है। दूती नायक को नायिका की इस वियोग-दशा की खबर दे रही है—

मा गच्छ प्रमदाप्रिय, प्रियशतैर्भूयस्त्वमुक्तो मया
बाला प्राङ्गणभूगतेन भवता प्राप्नोति निष्ठां पराम् ।
किं चान्यत् कुचभारपीडनसहैर्यत्नप्रवृद्धैरपि
त्रुट्यत्कञ्चुकजालकैरनुदिनं निःसूत्रमस्मद्गृहम् ॥

हे प्रमदाप्रिय, विदेश मत जाओ, मैं हजारों बार तुम्हें निहोरा कर रही हूँ। तुम्हारी दयिता तुममें बहुत ही प्रेम धारण करती है। मैं उसकी विषम दशा का वर्णन क्या करूँ? तुम जानेके लिये आँगन में पैर रखोगे, यह सोच कर ही स्तनों के भार को सहने में समर्थ तथा

यत्नपूर्वक बाँधी गई उसकी कञ्चुकी बार बार टूटी जा रही है, उसके लिये हमारे घर में डोरा भी नहीं बच गया। अभी तुम्हारे जाने के समय की ऐसी दशा है। आगे न जाने क्या होगा।

इन्दुलेखा

'इन्दुलेखा' का नाम भी स्त्री कवियों में है। इनका जन्म कहाँ हुआ, कब हुआ, इन्होंने किस काव्य ग्रन्थ का निर्माण किया, इन प्रश्नों का कुछ भी उत्तर नहीं दिया जा सकता। वल्लभ देव की सुभाषितावलि में इन्दुलेखा का एक पद्य दिया गया है।

सूर्यास्त के विषय में कवयित्री की सुन्दर कल्पना है:—

> एके वारनिधौ प्रवेशमपरे लोकान्तरालोकनम्
> केचित् पावकयोगितां निजगदुः क्षीणेऽह्निचण्डार्चिषः।
> मिथ्या चैतदसाक्षिकं प्रियसखि प्रत्यक्षतीव्रातपं
> मन्येऽहं पुनरध्वनीनरमणीचेतोधिशेते रविः॥

कोई कहता है कि सायंकाल में सूर्य भगवान् समुद्र में समा जाते हैं; किसी की राय है कि वे दूसरे लोक को चले जाते हैं; दूसरे कहते हैं, अग्नि में चले जाते हैं[१]। परन्तु हे प्यारी सखि! मुझे यह सब झूठ मालूम होता है। पूर्वोक्त घटना की सत्यता का कोई साक्षी नहीं है। पथिकों की नारियों का चित्त वियोगजनित बाधा से अधिक सन्तप्त है। मालूम होता है कि सूर्य रात को इसी कोमल चित्त में शयन करने के लिये प्रवेश करता है जिससे उसमें असह्य गर्मी पैदा हो जाती है। प्रोषितपतिका नायिकाओं का हृदय रात को पति-वियोग से अधिक सन्तप्त हो जाता है। साधारण बात कैसे अनोखे ढंग से कही गई है।

---

१. आदित्यो वा अस्तं यन्नग्निं प्रविशति। इति श्रुतिः। रघु० चतुर्थ सर्ग, १ श्लोक पर मल्लिनाथ की टीका से उद्धृत।

मारुला

यद्यपि इनके नाम से एक ही कविता सुभाषितावलि में मिलती है, तथापि धनदेव के उल्लेख से जान पड़ता है कि ये प्रवीण स्त्रियों में गिनी जाती थीं। यह प्रशंसा केवल एक ही पद्य पर अवलम्बित नहीं हो सकती; अतः इन्होंने अन्य कविताओं की भी रचना की होगी, यह सहज में ही माना जा सकता है।

इन की रचना नीचे दी जाती है—

कृशा केनासित्वं ? प्रकृतिरियमङ्गस्य ननु मे
मलाधूमा कस्मात् ? गुरुजनगृहे पाचकतमा।
स्मरत्यस्मान् कच्चिन्नहि नहि नहीत्येवमगमत्
स्मरोत्कम्पं बाला मम हृदि निपत्य प्ररुदिता ॥

कोई विरही अपने मित्र से स्त्री की बात कह रहा है:—तुम दुबली क्यों हो, मेरे इस पूछने पर उसने कहा कि जन्म से ही मेरे शरीर की ऐसी दशा है। जब मैंने पूछा कि तुम मैली क्यों देख पड़ती हो, तब उसने जवाब दिया कि श्वसुर जी के घर में भोजन पकाने से। जब मैंने पूछा कि क्या तुम मुझे याद करती हो, तब तो वह मुग्धा बाला "नहीं, नहीं" कहती हुई काम-जनित पीड़ा से काँपने लगी और मेरे हृदय से लगकर जोरों से रोने लगी।

इस श्लोक में सरलता खूब है। यह पद्य कड़े दिल में भी सहानुभूति पैदा कर रहा है। नायिका की मुग्धता का क्या ही सच्चा चित्र खींचा गया है। (अपूर्ण)

---

(५) सुंग वंश का एक शिलालेख

[लेखक—बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर बी० ए०, अयोध्या]

एक मंदिर की देहली के नीचे के पत्थर पर डेढ़ पंक्तियाँ प्राचीन अक्षरों की खुदी हुई हैं। एक दिन मेरी दृष्टि उन पर पड़ी। प्राचीन लिपियों से मुझे कुछ परिचय है। अतः मैंने उनको ध्यान से देखा, तो उनमें पुष्यमित्र का नाम पढ़ा गया; पर उस समय और कुछ न ज्ञात हुआ। पुष्यमित्र के विषय में मुझे इतना स्मरण था कि वह एक पौराणिक तथा ऐतिहासिक राजा था, और यह भी सुना था कि उसका कोई शिलालेख इत्यादि अब तक नहीं मिला है। अतः वह शिलालेख ऐतिहासिक दृष्टि से मुझे बड़े महत्व का प्रतीत हुआ। यह समझकर मैंने उसकी एक प्रतिलिपि कागज पर लिख ली। घर लाकर जब उसको ध्यानपूर्वक पढ़ा, तो, यद्यपि प्रतिलिपि में कुछ अशुद्धियाँ होने के कारण स्पष्ट अर्थ तो न लगा, पर यह निश्चय अवश्य हो गया कि लेख बड़े काम का है।

उसकी एक प्रति मैंने अपने मित्र बाबू श्यामसुन्दरदास जी के द्वारा रायबहादुर पंडित गौरीशंकर हीराचंद जी ओझा के पास, उनकी सम्मति प्राप्त करने के निमित्त, भेजी और एक प्रति मिस्टर आर० बर्न साहब सी० एस० आई० को दिखलाई। इन दोनों महाशयों ने कहा कि लेख तो अवश्य महत्व का ज्ञात होता है; पर जब तक उसकी थपुवाँ छाप न प्राप्त हो, तब तक उसके विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। अतः मैंने अब की यात्रा में उक्त लेख की एक थपुवाँ छाप प्राप्त कर ली, और उस छाप का फोटो भी उतरवाया। पत्थर के स्थान स्थान पर घिस जाने एवं कहीं कहीं ऊँचे नीचे होने के कारण छाप जैसी स्पष्ट होनी चाहिए, वैसी तो नहीं आई,

तथापि ध्यान देने से पढ़े जाने के योग्य हो गई। उसके फोटो की भी यही दशा हुई। उसको मैंने अपनी समझ के अनुसार पढ़ा और फिर फोटो की एक प्रति पर काला तथा श्वेत रंग भरवाकर उसको स्पष्ट पढ़े जाने के योग्य बनवा लिया।

उसके पढ़ने पर ज्ञात हुआ कि उक्त शिलालेख वस्तुतः बड़े महत्व तथा काम का है। अतः प्राचीन इतिहासवेत्ताओं तथा अनुसंधान-कर्ताओं के देखने के निमित्त उसके दो ब्लाक इस पत्रिका में प्रकाशित किए जाते हैं, जिसमें इस शास्त्र के प्रेमियों को उस पर विचार करने तथा उससे उस समय के ऐतिहासिक विषय के अनुसंधान करने का अवसर प्राप्त हो सके।

ब्लाक नं० १ थपुवाँ छाप के ज्यों के त्यों फोटो से बनवाया गया है; और ब्लाक नं० २ रंग भराए हुए फोटो से।

इस शिलालेख का नागरी अक्षरांतर मेरी समझ के अनुसार यह होता है—

कोसलाधिपेन द्विरश्वमेधयाजिनः सेनापतेः पुष्यमित्रस्य षष्ठेन कौशिकीपुत्रेण ध

........................धर्मराज्ञा पितुः फल्गुदेवस्य केतनं कारितं।

इस पाठ का अर्थ यह होता है—

दो अश्वमेध यज्ञों के कर्त्ता सेनापति पुष्यमित्र के छठें (पुरुष अथवा भाई) कौशिकीपुत्र कोसलाधिप ध........................

........................धर्मराजने (अपने) पिता फल्गुदेव का केतन (स्मारकगृह) बनवाया।

इस शिलालेख के कुछ अक्षरों का पता नहीं है। पहली पंक्ति के अंत में जो एक अक्षर 'ध' है, उसके पश्चात् एक और अक्षर का कुछ चिह्न सा लक्षित होता है जो संभवतः 'म' हो सकता है। यदि

वह 'म' हो तो पहली पंक्ति के अंत में 'धर्म' शब्द की संभावना है; पर इस 'धर्म' शब्द की विभक्ति आदि का पता नहीं है। यह भी संभव है कि कुछ अक्षर भित्ति के नीचे दब गए हों। इसके अतिरिक्त यह भी संभव है कि पहली पंक्ति के ऊपर एक या दो पंक्तियाँ और भी हों, जो कि देहली के नीचे आ गई हों। इन बातों का अनुसंधान फिर अवसर प्राप्त होने पर किया जायगा। उसके निमित्त इस लेख का रोक रखना उचित न समझकर जो छाप इस समय प्राप्त हुई, उसी के ब्लाक प्रकाशित कर दिए गए हैं।

दूसरी पंक्ति के आरंभ के कुछ अक्षर ऐसे घिस गए हैं कि उनका चिह्न तक नहीं रह गया है। फिर चार अक्षर स्पष्ट नहीं हैं। पर मेरी समझ में उनको "धर्मराज्ञा" पढ़ना युक्तियुक्त है। पहला अक्षर तो 'ध' और दूसरा'म' अवश्य ही है। 'म' की दाहिनी भुजा ऊपर जाकर कुछ मुड़ी हुई भी प्रतीत होती है। अतः प्रथम दो अक्षरों का 'धर्म' पढ़ना युक्त है। तीसरे अक्षर के 'र' होने में भी कोई बाधा नहीं है। उसके ऊपर जो मात्रा लगी है, वह अवश्य संदेहात्मक है। वह दाहिनी ओर चलकर बाईं ओर झुकती हुई ऊपर को गई है, जिससे उसका 'इकार' की मात्रा होना भासित होता है। परंतु यदि चौथा अक्षर 'ज्ञा' अथवा 'ज्ञः' है तो 'र' पर आकार ही की मात्रा का होना मानना पड़ता है; और ऊपर के घुमाव को पत्थर का गड्ढा मात्र। क्योंकि 'रिज्ञा' अथवा 'रिज्ञः' दोनों ही शब्द निरर्थक होते हैं; और 'राज्ञा' तथा 'राज्ञः' दोनों सार्थक। चौथे अक्षर के ऊपर का भाग पहली पंक्ति के तेरहवें अक्षर 'ज' से बहुत मिलता है। भेद इतना ही है कि इसके बीच की लकीर कुछ दाहिनी ओर बढ़कर ऊपर को तिरछी हो गई है, जिसके कारण उसको 'ज' में आकार की मात्रा लगी हुई माना गया है; क्योंकि प्राचीन लेखों में बहुधा 'ज' में आकार की मात्रा इस प्रकार से लगी हुई पाई जाती है। (देखो "प्राचीनलिपिमाला" लिपिपत्र २)

इन विचारों से दूसरी पंक्ति के प्रथम चार अक्षरों को 'धर्मराज्ञा' पढ़ना उचित ज्ञात होता है।

दूसरी पंक्ति में 'फल्गु' शब्द भी कुछ संदिग्ध सा है। पर इस शब्द के प्रथमाक्षर की दाहिनी भुजा ऊपर के सिरे पर कुछ बाईं ओर घूमी हुई है, जिससे उसका 'फ' होना प्रतीत होता है। इस अक्षर के नीचे एक श्वेत धब्बा सा दिखाई देता है। उसको पत्थर का चिह्न मात्र समझना चाहिए। क्योंकि यदि उस स्थान पर एक छोटी लकीर का होना संभावित माना जाय, तो 'फ' में उकार की मात्रा का होना मानना पड़ता है। पर 'फु' को उसके पश्चात् के अक्षर 'ल्गु' से मिलाने से कोई सार्थक शब्द नहीं बनता। 'फल्गु' शब्द के द्वितीयाक्षर का ऊर्ध्व भाग तो पहली पंक्ति के तीसरे अक्षर 'ल' से सर्वथा मिलता ही है; और उसके नीचे जो अक्षर लगा है, उसके रूप का 'ग' "प्राचीन लिपिमाला" के तीसरे लिपिपत्र में दिखाई देता है; और उसकी दाहिनी टाँग जो दाहिनी ओर आड़े बल में बढ़ी है, वह 'उकार' की मात्रा है। अतः इस शब्द को 'फल्गु' पढ़ना अनुचित नहीं जान पड़ता। गंगादत्त, जमुनाप्रसाद, गोमतीदत्त इत्यादि की भाँति 'फल्गुदेव' नाम का होना भी संभव है; विशेषतः ऐसी दशा में जब कि पुष्यमित्र का वंश मगध प्रांत ही का था।

जो अनुवाद इस शिलालेख का ऊपर लिखा गया है, उसमें 'षष्ठेन' के पश्चात् 'पुरुषेन' अथवा 'भ्रात्रा' का अध्याहार किया गया है। यदि 'पुरुषेन' का अध्याहार ठीक माना जाय, तो 'फल्गुदेव' पुष्यमित्र के पौत्र का पौत्र होता है; और 'फल्गुदेव' का पुत्र इस शिलालेख में निर्दिष्ट गृह का बनवानेवाला एवं उस समय का 'कोसलाधिप' ठहरता है। पर यदि 'भ्रात्रा' पदका अध्याहार ठीक समझा जाय, तो उक्त 'केतनं' का बनवानेवाला तथा उस समय का 'कोसलाधिप' पुष्पमित्र का छठा भाई, जिसकी माता का नाम "कौशिकी" था, ठहरता है; और

पुष्यमित्र के पिता का नाम 'फल्गुदेव' सिद्ध होता है। इन दोनों अवस्थाओं में 'धर्मराज्ञा' पद उक्त केतन बनवानेवाले का या तो विशेषण माना जा सकता है या नाम।

पर यदि 'षष्ठेन' पद के पश्चात् किसी पद का अध्याहार न माना जाय, तो शिलालेख के वाक्य का यह अर्थ होगा—

"दो अश्वमेध यज्ञों के कर्त्ता सेनापति पुष्यमित्र के छठे कौशिकी-पुत्र (कौशिकी रानी के गर्भ से उत्पन्न छठा पुत्र; अथवा छठा पुत्र जो कौशिकी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था) कोसलाधिप ध...... धर्मराज ने पिता फल्गुदेव का केतन (स्मारकगृह) बनवाया।"

पर इस अर्थ में एक बड़ी असमंजस पड़ती है। वह यह कि उक्त गृह के बनवानेवाले के पिता का नाम "फल्गुदेव" ठहरता है। पर यह हो नहीं सकता; क्योंकि वह इस अर्थ के अनुसार पुष्यमित्र का छठा कौशिकी-पुत्र है। इस अर्थ में सामंजस्य लाने के निमित्त दूसरी पंक्ति में जो 'पितुः' पद है, उसके पश्चात् तथा 'फल्गुदेवस्य' पद के पूर्व किसी शब्दका 'फल्गुदेवस्य' पद के विशेषण रूप से अध्याहार करना पड़ेगा। यदि वह अध्याहृत पद 'पूज्यस्य' माना जाय, तो दूसरी पंक्ति का पाठ अर्थ के निमित्त इस प्रकार माना जायगा—

'धर्मराज्ञा पितुः (पूज्यस्य) फल्गुदेवस्य केतनं कारितं'।

इस दशा में द्वितीय पंक्ति का अर्थ यह होगा—

"धर्मराज ने (अपने) पिता (अर्थात् पुष्यमित्रों) के पूज्य फल्गुदेव का मंदिर बनवाया।"

इस अर्थ में 'फल्गुदेव' नामक किसी देवता अथवा महात्मा को पुष्यमित्र का पूज्य देव मानना पड़ता है।

इस अर्थ में भी 'धर्मराज्ञा' पद 'केतन' बनवानेवाले का नाम अथवा विशेषण दोनों ही हो सकता है।

खेद का विषय है कि इस शिलालेख के कुछ अक्षर ऐसे लुप्त

हो गए हैं कि निश्चयपूर्वक इसका अर्थ निर्धारित नहीं किया जा सकता। पर जिस दशा में वह इस समय मुझे मिला है, उसकी छाप विद्वानों के देखने के निमित्त प्रकाशित कर दी गई है और उसका नागरी अक्षरांतर तथा अर्थ भी अपनी समझ के अनुसार लिख दिया गया है। आशा है कि इस विषय के विद्वान् लोग इस पर विशेष विचार करके अपना अपना मत प्रकाशित करेंगे; और मैं भी फिर इस पर विचार करूँगा।

जिस मंदिर में यह शिलालेख है, उसका नाम, पता तथा विशेष विवरण, एवं इस विषय पर पौराणिक तथा ऐतिहासिक टिप्पणियाँ मैं फिर किसी अवसर पर अपने स्वतंत्र विचारों के साथ प्रकाशित करूँगा; क्योंकि इस समय मैं हरिद्वार में हूँ, जहाँ मुझे उपयुक्त सामग्री, पुस्तकें इत्यादि प्राप्त नहीं हो सकतीं।*

---

* इस शिलालेख के संबंध में हम अपने विचार पत्रिका की आगामी संख्या में प्रकाशित करेंगे—सम्पादक।

(६) भगवंतराय खीची

[लेखक—बा० व्रजरत्नदास, काशी]

प्रत्येक जाति का यह सर्वदा ध्येय रहा है कि वह अपने को सजीव बनाए रखने तथा उन्नति पथ पर दृढ़ता से सर्वदा अग्रसर होने का प्रयत्न करती रहे। इसका एक प्रधान साधन उसके पूर्व-गौरव की स्मृति है जो सदा संजीवनी शक्ति का संचार करते हुए उसको अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिये उत्साहित करती रहती है। इस स्मृति की रक्षा उस जाति के साहित्य-भंडार में उसे सुरक्षित रखने ही से हो सकती है और इसको सुरक्षित न रखना अपने ध्येय को नष्ट करना है। हम भारतवासियों के लिये यह पूर्व-गौरव की स्मृति अत्यधिक आवश्यक है; क्योंकि उसके न रहने पर संसार की जाति-प्रदर्शिनी में हमें स्यात् कोई स्थान मिलना असंभव हो जायगा। प्रकृति ने हमारे भारत पर ऐसी कृपादृष्टि बना रखी है कि यहाँ सभी प्रकार के जल-वायु, नदी, निर्झर, अन्न, फल, फूल, पशु आदि वर्तमान हैं और यहाँ के रहनेवालों को जीवन की किसी आवश्यक वस्तु के लिये दूसरों का मुख देखना नहीं पड़ता। इसी कृपादृष्टि के कारण प्रकृति ने इसे सुरक्षित बनाने को पर्वतमालाओं तथा सागर-तरंगों से घेर रखा है। पर अन्य देशवासियों ने, स्यात् इसी द्वेष के कारण, इन पर्वतमालाओं को भेदकर तथा समुद्र के वक्षस्थल को चीर कर इस भारत पर चढ़ाई कर इसे युद्ध-क्रीड़ा का क्षेत्र बना डाला है। ऐसी अवस्था में भारत के शृंखलाबद्ध इतिहास का मिलना कहाँ तक संभव है, सो नहीं कहा जा सकता। फिर भी जो सामग्री उपलब्ध है या प्रयत्न द्वारा उपलब्ध की जा सकती है, उसमें चार

बातें मुख्य हैं—प्राचीन पुस्तकें, विदेशियों के लिखे यात्रा–विवरण तथा इतिहास, प्राचीन शिलालेख तथा दानपत्र और सिक्के, मुद्रा तथा शिल्प।

प्रथम प्रकार की सामग्री में संस्कृत, प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओं तथा उन्हीं से व्युत्पन्न आधुनिक देशी भाषाओं की पुस्तकें हैं। पाश्चात्य तथा देशीय इतिहासवेत्ता विद्वानों ने प्राचीन भाषाओं के ग्रंथों का परिशीलन कर इतिहास पर जितना प्रकाश डाला है, उतना आधुनिक भाषाओं के ग्रंथों पर परिश्रम नहीं किया गया है। अर्वाचीन तथा आधुनिक इतिहास अधिकतर फ़ारसी तथा उसी के आधार पर लिखे गए अँग्रेज़ी इतिहासों से तैयार किया गया है। देशी भाषाओं की पुस्तकों से भी, जो वास्तव में अधिक नहीं हैं, इस इतिहास के प्रस्तुत करने में सहायता मिल सकती है; पर उसका उपयोग नहीं किया गया।

हिंदी के साहित्य–भांडार की प्राचीन ऐतिहासिक पुस्तकों में पृथ्वीराज–रासा, खुम्माण रासा, राना रासा, रामपाल रासा, हम्मीर रासा, बीसलदेव रासा आदि ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। इन ग्रंथों के अनंतर अर्वाचीन समय में भी बहुत से ग्रंथ प्रस्तुत किए गए हैं, जिनमें कवियों ने अपने आश्रयदाता नरेशों के चरित्र वर्णन किए हैं। इन चरित्रों, रासों तथा विरुदावलियों में कोरे इतिवृत्त ही नहीं दिए गए हैं; बल्कि उन्हें कवियों ने अलंकारादि से खूब सजाकर पाठकों के सन्मुख रखा है। आश्रयदाताओं के दान आदि का वर्णन करते समय कल्पना की उड़ान अभूतपूर्व ही रहती है। युद्धादि के वर्णन में अक्षरों के भी विचित्र युद्ध दिखलाई पड़ते हैं; अर्थात् बहुत से वर्ण एक दूसरे में पिच्ची कर दिए जाते हैं। इन सब के होते हुए भी ऐतिहासिक विवरण शुद्ध रूप में ही पाया जाता है; अर्थात् पक्षपात करके ये कविगण सत्यभ्रष्ट होना उचित नहीं समझते। महाकवि केशवदास कृत 'वीरसिंह-चरित' तथा 'रत्न-बावनी' और

गोरेलाल कृत 'छत्रसाल' में बुंदेला नरेशों का इतिहास संक्षिप्त रूप में तथा चरितनायकों का विशद रूप में वर्णित है। राजविलास में प्रसिद्ध महाराणा राजसिंह और सुजानचरित्र में भरतपुर-नरेश सूरजमल जाट का चरित्र दिया गया है। जंगनामा, हिम्मत बहादुर विरुदावाली आदि में ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण दिया गया है।

इन ऐतिहासिक ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य काव्य ग्रंथों में भी कवियों ने निज वंश तथा अपने आश्रयदाताओं के वंश का वर्णन देकर और निर्माण संवत् लिखकर इतिहास का बहुत उपकार किया है, पर इस सामग्री से अभी तक विशेष सहायता नहीं ली गई है। ओड़छा-नरेश उदोतसिंह के नाम फ़ारसी, उर्दू तथा अंग्रेज़ी इतिहासों में उदयसिंह, अद्योतसिंह तथा उदितसिंह लिखे गए हैं। पर उन्हीं के आश्रित कवियों के ग्रंथों से निश्चित होता है कि वस्तुतः उनका नाम उदोतसिंह था। हंसराज बख्शी ने 'श्री जुगल-स्वरूप विरह पत्रिका' में लिखा है—

गहिरवार कासी-कलस हिरदैसाहि नरेस।
पारथ सम भारत करे गुन गन सकै न सेस॥
सूबा महमद साहि को बंगस महमद खान।
क़ैद कस्यो छोड्यो बहुरि जानत सकल जहान॥

पर मैंने जितने फ़ारसी आदि भाषाओं के इतिहास देखे, उनमें किसी के लेखक को स्यात् यह नहीं मालूम था; क्योंकि किसीने इसका उल्लेख नहीं किया। इस विषय पर फिर कभी विचार किया जायगा। इस प्रका की अनेक घटनाओं का इन ग्रंथों में उल्लेख मिलता है।

भारत सरकार की सहायता से काशी नागरीप्रचारिणी सभा हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकों की खोज सन् १९०० ई० से बराबर करा रही है जिससे बहुत से अलभ्य ग्रंथों तथा अज्ञात ग्रंथकारों का पता लगता जा रहा है। यदि इस प्रकार की खोज राजपूताने

में भी कराई जाय तो निश्चित है कि इतिहास की बहुत कुछ सामग्री वहाँ मिल सकेगी। इसी खोज में इस वर्ष एक छोटी पुस्तक 'रासा भगवंतसिंह' का पता लगा है जिसकी प्रतिलिपि भी ले ली गई है। इस अप्राप्य पुस्तक का ऐतिहासिक महत्त्व समझकर कुछ टीका टिप्पणी के साथ सभा की मुखपत्रिका में इसे प्रकाशित कर देना उचित हुआ।

इस छोटे से ग्रंथ में एक सौ चार छंद हैं। पर कवि ने इतने ही में सत्रह प्रकार के छंदों का प्रयोग कर उसकी रोचकता बढ़ा दी है। भगवंत सिंह का वंश-परिचय तथा चरित्र नहीं दिया गया है। केवल उनके अंतिम युद्ध का संक्षिप्त उल्लेख है। वीर रस का काव्य होने पर भी इसमें मिलित वर्णों का प्रयोग नहीं के समान है। भाषा ओजस्विनी है और बात चीत में फारसी वाक्यांशों का भी प्रयोग किया गया है। इस ग्रंथ में इस घटना की—अर्थात् भगवंतसिंह के मारे जाने की—तिथि इस प्रकार दी है—

सँवत सत्रह सौ सतानबे कातिक मंगलवार।
सित नौमी संग्राम भो विदित सकल संसार॥

अर्थात् कार्तिक शुक्ल ९ मंगलवार सं० १७९७ को यह घटना हुई। पर इस दोहे के पढ़ने में प्रथम पंक्ति की धारा ठीक नहीं होती, अर्थात् एक मात्रा बढ़ती है। साथ ही अन्य इतिहासों में इस घटना का समय सन् १७३६ दिया गया है जिसमें चार वर्ष की भिन्नता भी पड़ती थी। इन कारणों से दोहे की मिती की जाँच की गई। ऐफेमेरिस नामक विशद पंचांग ग्रंथ से मिलान करने पर यह ज्ञात हुआ कि सं० १७९७ वि० में उस तिथि को मंगलवार न होकर शनिवार (१८ अक्तू० सन् १७४०) था; पर सं० १७९२ वि० में उस तिथि को मंगलवार पड़ता है। 'बानवे' पाठ करने से दोहे की धारा ठीक हो जाती है और उस तिथि को अँग्रेजी तारीख के १४ अक्तूबर सन्

१७३५ ई० होने से भिन्नता भी एक प्रकार से दूर हो जाती है। इस लिये पुस्तक में 'बानवे' ही पाठ रखा गया है।

भगवंतराय खीची के विषय में अन्य इतिहासों से जो कुछ ज्ञात हुआ है, उसका संक्षेपतः उल्लेख कर दिया जाता है। सन् १९०९-१९१० की खोज की रिपोर्ट में गोपाल कवि कृत 'भगवंतराय की विरुदावली' नामक एक पुस्तक का उल्लेख है। इसमें भी उसी अंतिम युद्ध का वर्णन है और यह पुस्तक भी आकार में लगभग इसी रासा के बराबर है।

सन् १५४३ ई० में देवराजसिंह नामक एक चौहान क्षत्रिय मध्य भारत के खीचीदरा, प्रसिद्ध नाम राघवगढ़, से अंतर्वेदी में आकर बस गए और यमुना तटस्थ ऐझी राज्य के गौतम वंशीय राजा की पुत्री से उनका विवाह हो गया। इसके अनंतर यह उस राज्य के स्वामी हो गए। इनके वंश में परशुरामसिंह हुए जिनके पुत्र का नाम अराड़-सिंह था। अन्य पुस्तकों में अजाजू, अजारू तथा चदारू नाम भी मिलता है। यह पैतृक संपत्ति में भाग न पाने के कारण दरिद्रावस्था में थे कि भाग्य से इन्हें खेत जोतते समय कुछ गड़ा धन प्राप्त हो गया जिससे इन्होंने असोथर[1], ऐझी[2], मुत्तौर[3] तथा आयासाह[4] के परगने खरीद लिए।

कहा जाता है कि इन्होंने कानपुर तथा फतेहपुर में सोलह परगने और क्रय किए थे। इस वंश के राजा असोथर के राजा हो कहलाते हैं। इस स्थान का प्राचीन नाम अश्वत्थामापुर कहा जाता है। इसके

(१) २५°४५' उ० ८०° ५३° पू०। फतहपुर से सात कोस दक्षिण-पूर्व नहर पर है। (२) असोथर से ठीक ढाई कोस पश्चिम है। (३) २५° ४७' उ० और ८०° ३८' पू०। फतेहपुर से सात कोस दक्षिण-पश्चिम है। (४) ये चारों स्थान गाजीपुर तहसील में हैं और आयासाह इस तहसील के उत्तर का अंश है। यह फतेहपुर, गाजीपुर, मुत्तौर और टप्पाजार परगनों से घिरा हुआ है।

पास ही अरारूसिंह ने सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एक दुर्ग बनवाया था जिसका भारी ढूह अब तक वर्तमान है। इस पर एक स्थान है जिसे लोग द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा का बतलाते हैं जो महादेव जी का प्राचीन मंदिर ज्ञात होता है। अरारूसिंह ने सन् १५९१ ई० के लगभग गाज़ीपुर से एक मील उत्तर पैना ग्राम में एक दुर्ग बनवाया था जो पहले चंदेलों के अधिकार में था, पर उस समय खँड़हर हो रहा था। यह अब फ़तेहगढ़ कहलाता है। इन्हीं अरारूसिंह के पुत्र भगवंतराय खीची थे।

भगवंतसिंह योग्य, वीर तथा साहसी थे और दैवयोग से इन्हें वह समय भी मिल गया था जब औरंगज़ेब की मृत्यु के अनंतर मुग़ल साम्राज्य में चारों ओर अशांति फैल गई थी और साम्राज्य छिन्न भिन्न हो रहा था। भगवंतसिंह ने इसी समय स्वतंत्रता का झंडा खड़ा किया था और इन्होंने आजीवन उसे बादशाही सेनाओं से लड़ भिड़कर सुरक्षित रखा। मुहम्मद शाह बादशाह के समय कोड़ परगने का फ़ौजदार जाननिसार ख़ाँ था जो प्रधान मंत्री क़मरुद्दीन ख़ाँ का बहनोई* था। भगवंतसिंह से और इससे बराबर लड़ाई हुआ करती थी। इसी समय इलाहाबाद सूबे के अध्यक्ष सरबुलंद ख़ाँ कोड़ में आए जिनसे जान-निसार ख़ाँ ने भगवंतराय को नष्ट करने के लिये सहायता माँगी। सरबुलंद ख़ाँ ने यह बहाना निकाला कि भगवंतराय को दमन करने में बहुत समय व्यतीत होगा और उसके पास सेना में वेतन बाँटने के लिये धन नहीं है। हाँ यदि जान-निसार ख़ाँ उसकी धन से सहायता करे तो वह युद्ध के लिये तैयार है। पर जान-निसार ख़ाँ के इससे सम्मत न होने पर सरबुलंद ख़ाँ इलाहाबाद लौट गया। भगवंतसिंह को इन बातों का पता था और वह अवसर देख रहा था। कुछ समय व्यतीत कर इसने एकाएक जाननिसार ख़ाँ पर धावा कर दिया और

* फ़तेहपुर के डिस्ट्रिक्ट गज़े० पृ० १५६ में इसे क़मरुद्दीन का भाई लिखा है।

उसे युद्ध में मारकर उसका कैंप लूट लिया। उसके घर की स्त्रियों को लूटकर अपने साथवालों में वितरण कर दिया। मुंशी सदासुखलाल कृत मुंतख़ाबुत्तवारीख़ में लिखा है कि उसके पुत्र रूपराय ने जाननिसार ख़ाँ की पुत्री अपने लिये ली; पर उसने विष खाकर आत्महत्या कर ली।

इस घटना का समाचार जब क़मरुद्दीन ख़ाँ को मिला, तब उसने बहुत ही क्रुद्ध होकर बड़ी सेना के साथ भगवंतसिंह पर चढ़ाई की*। इसने ग़ाज़ीपुर के दुर्ग में अपनी रक्षा ऐसे दृढ़ता तथा साहस के साथ की कि क़मरुद्दीन ख़ाँ को अंत में निष्फल प्रयत्न होकर लौट जाना पड़ा। जाते समय भगवंतसिंह को दंड देने का भार फ़र्रुख़ाबाद के नवाब मुहम्मद ख़ाँ बंगश को सौंप गए थे। पर इन्होंने कुछ धन लेकर इस कार्य की पूर्ति कर दी और अपनी राजधानी फ़र्रुख़ाबाद को लौट गए। भगवंतसिंह ने इसके अनंतर कोड़ पर अधिकार कर लिया और बादशाही राज्य के आस पास लूट मार करने लगे।

जब मुहम्मद शाह बादशाह ने अवध के नवाब बुर्हानुलमुल्क को इस परगने का अधिकार दे दिया, तब यह ससैन्य यहाँ शांति-स्थापन के लिए आए। भगवंतसिंह यह समाचार सुनकर तीन सहस्र सवारों के साथ ग़ाज़ीपुर के दुर्ग से बाहर निकले और नवाब की सेना के सामने जा डटे। नवाब के तोपखाने से कुछ क्षति उठाकर यह उसके रुख को बचाते हुए अबूतुराब ख़ाँ के अधीनस्थ हरावल पर जा टूटे। उस अफ़सर को मारकर तथा हरावल को छिन्न भिन्न कर भगवंतसिंह नवाब की शरीर-रक्षक सेना पर जा पड़े। मीर खुदायार ख़ाँ छः सहस्र सवारों

* सैरुल मुताख़िरीन में लिखा है कि उसने अज़ीमुल्लाह ख़ाँ को दंड देने के लिये भेजा। यह समाचार सुनकर भगवंतराय जंगलों में भाग गए। इसके अनंतर अज़ीमुल्लाह ख़ादिम बेग आदि को यह कार्य सौंप दिल्ली लौट गए। भगवंतराय ने भी लौटकर इन सरदारों को मार डाला और उसके चकले पर अधिकार कर लिया।

के साथ रास्ता रोकने को आगे बढ़ा, पर घोर युद्ध के अनंतर उसे परास्त होना पड़ा। अब नवाब स्वयं आगे बढ़े और गहरा युद्ध होने लगा। शेख अब्दुल्ला गाज़ीपुरी, शेख रूहुल अमीन बिलग्रामी, दुर्जनसिंह चौधरी, दिलावर खाँ, अजमत खाँ और अन्य पठानों ने भगवंतसिंह को घेर लिया जो अंत में शत्रुओं से लड़ते भिड़ते दुर्जनसिंह के हाथ मारे गए। दुर्जनों से किसी प्रकार की दूसरी आशा करना व्यर्थ है। भगवंतसिंह का सिर दिल्ली भेजा गया।*

तारीखे-हिंदी में लिखा है कि बुर्हानुल्मुल्क के आने का समाचार सुनकर भगवंतसिंह पचीस सहस्र सवार तथा पैदल सेना लेकर आगे बढ़ा। बुर्हानुल् मुल्क दो सहस्र सवारों के साथ गंगा जी उतर चुके थे और बाक़ी सेना उस पार ही थी कि भगवंतसिंह ने धावा कर दिया और युद्ध होने लगा। भगवंतसिंह ने एक तीर मारा जो बुर्हानुल्मुल्क के हाथ में लगा; पर नवाब ने उस तीर को निकालकर फेंक दिया और एक तीर ऐसा मारा कि इसके सिर में लगकर प्राणघातक हो गया। इसकी बहुत सेना मारी गई और बाक़ी भाग गई। भगवंतसिंह तथा इनके पुत्र का सिर भालों पर लगाकर राजधानी (दिल्ली) भेज दिया गया। †

इस युद्ध का वर्णन दो इतिहासों से—एक हिंदू तथा दूसरा मुसलमान-कृत उद्धृत किया गया है और दोनों की विभिन्नता स्पष्ट है। भगवंतसिंह के पुत्र रूपसिंह सन् १७८० ई० तक जीवित रहे और उनकी मृत्यु पर बरिआरसिंह उनके उत्तराधिकारी हुए। नवाब आसफुद्दौला के समय इनका राज्य छिन गया और यह अवध राज्य की ओर से कुछ पेंशन मिलने पर बाँदा में जा बसे। इनके उत्तराधिकारी इनके

---

* हरनामसिंह कृत सआदत जावेद इलि० डा उ० जि० ८ पृ० ३४१-२। इतिहासों में लिखा है कि भगवंतसिंह के शरीर में भूसा भरकर क़मरुद्दीन के पास भेजा गया था।

† रुस्तम अली कृत तारीखे हिंदी, इलि० डा उ० जि० ८ पृ० ५२।

दत्तक पुत्र दुनियापतिसिंह हुए जिनकी पेंशन नवाब बाक़रअली खाँ ने बंद कर दी। दुनियापतिसिंह ने एकडाला तथा ग़ाज़ीपुर में लूट मार आरंभ की, तब यह पेंशन पुनः मिलने लगी। सन् १८०१ ई० के नवम्बर को सआदत अली खाँ ने कोड़ परगना और उसके पूर्व के दो-आबे, रुहेलखंड, गोरखपुर आदि स्थान ब्रिटिश सरकार को दे दिए, तब इनकी पेंशन पुनः बंद कर दी गई। इस पर दुनियापतिसिंह ने पुनः अपनी पुरानी प्रथा का अनुसरण किया। इलाहाबाद के कलेक्टर अह-मुटी ने ग़ाज़ीपुर के पास उन पर धावा किया, पर युद्ध में घायल हो गए। सन् १८०४ ई० में कलेक्टर कथबर्ट के यहाँ जाकर अधीनता स्वीकार कर ली। सरकार ने इन्हें पेंशन की एक सनद दी जो ७३०६ रु० ११ आना की थी। दुनियापतिसिंह के भ्रातृपुत्र तथा दत्तकपुत्र रघुबरसिंह के निस्संतान मरने पर उनकी स्त्री ने लक्ष्मणसिंह को गोद लिया। इनकी सन् १८९१ ई० में मृत्यु हुई। इनके दो पुत्र राजा नृपति सिंह और कुँअर चंद्रभूषण सिंह हैं।

रासा के रचयिता पं० सदानंद मिश्र के विषय में कुछ ज्ञात न हो सका और न उन्होंने अपनी रचना ही में अपने विषय में कुछ लिखा है। केवल इतना मालूम होता है कि वे अपने आश्रयदाता के समसाम-यिक थे और उन्होंने आँखों देखी घटनाओं का उल्लेख किया है।

[पाद-टिप्पणी में शब्दों के अर्थ छंद-संख्या के अनुसार दिए गए हैं। चिह्न अन्य टिप्पणियों से संबंध रखते हैं।]

रासा भगवंतसिंह का

[दोहा]

येक दिवस भगवंत जू अति आनँद सों लीन ।
कोड़ जहानाबाद * को हुकुम कूच को कीन ॥ १ ॥

[छंद पद्धरी]

सज्जे सुबीर बज्जे निसान । लज्जे सुरेस, भज्जे गुमान ।
फुट्टो सुमेरु, टुट्टे अराति । कुट्टो कितेक लिद्देन साति ॥ २ ॥

[दोहा]

आइ जहानाबाद में करत मुलुक की गौर ।
सोधत बास अवास सभ लखिकै ठौर अठौर ॥ ३ ॥
साह मुहम्मद † छत्रपति दान कृपान जहान ।
सूबा कीनो अवध को बिदित सहादत खान ‡ ॥ ४ ॥
करे जे रच्छित बाहुबल दीन्हें नृपति निकारि ।
राखे जे धरमग्ग अति सकल बिचारि बिचारि ॥ ५ ॥
शाह मुहम्मद को हुकुम देखत खत इत आव ।
छोड़ि उतै मनसूर × को नेकु बिलंब न लाव ॥ ६ ॥

---

(४) सूबा = सूबेदार, प्रांताध्यक्ष । (६) खत = आज्ञापत्र ।

* जिला फ़तेहपुर के अंतर्गत कोड़ पर्गने में कोड़ और जहानाबाद नाम की दो बस्तियाँ हैं, जिनको बीच से नहर और पक्की सड़क अलग करती है । ये दोनों बस्तियाँ बहुत आस पास हैं, इससे इन दोनों को मिलाकर कोड़ जहानाबाद के नाम से भी पुकारा जाता है । भौगोलिक स्थिति २६°७′ उ० और ८०°२२′ पू० है ।

† साह मुहम्मद—दिल्ली के सम्राट् मुहम्मद शाह बादशाह गाजी जिनका राजत्व-काल सं० १७७६ से १८०५ तक था ।

‡ सहादत खान—अवध के प्रथम नवाब बुर्हानुलमुल्क सआदत खाँ का नाम इस रासा में सहादत खान, सादति खाँ आदि दिया गया है ।

× मनसूर—अवध के द्वितीय नवाब तथा सआदत खाँ के दामाद अबुलमनसूर खाँ सफ़दर जंग ।

पठ्यो पत्र बाहर कढ्यो है बारन असवार।
सहित कटक चौहान * को आवत लगी न बार ॥७॥
निसा रह्यौ तेहि ठौर ही प्रात चल्यौ तेहि आद।
सहित चमू पहुँच्यो तबै नगर रसूलाबाद † ॥८॥
नूर मुहम्मद को कह्यौ तुम न करो कछु ढील।
कड़ा इजारे लीन्ह हम जाइ करो तहसील ॥ ९ ॥
कै सलाम तिन कूच किय सुरसरि उतरि तुरंत।
नाम सुनत आयो तुरक लूट लियो भगवंत ॥ १० ॥
दूत सहादत खान सों बोल्यो बचन प्रमान।
लूटि लियो भगवंत ने नूर मुहम्मद खान ॥ ११ ॥

[मत्तगयंद छंद]

लूटन नायब को सुनिकै मलिकै कर दाँतन जीभ गह्यौ है।
सीस डुलाइ डुलाइ तऊ फिरि बोलत नाजिम मूक रह्यौ है॥
क्रोरि बिचारि बिचारि करै पुनि रोस के ज्वालन अंग दह्यौ है।
खात न पान न पानि पियै तजि गानन पानन नींद लह्यौ है॥ १२ ॥

[छंद त्रोटक]

उठि प्रात चमू चतुरंग चली।
सब लोक ससंकित भूमि हिली॥
ताको दल ब्योम न नेकु थिरै।
अहिराज न कैसेहु धीर धरै॥ १३ ॥

---

(७) बारन = हाथी। (९) इजारे = अधिकार। (१२) नाजिम = प्रबंधकर्ता, प्रांताध्यक्ष। क्रोरि = करोड़ी, वह अफ़सर जिसके अधीन एक करोड़ दाम या इससे अधिक आय की जमीन उगाहने के लिये हो। चालीस दाम का एक रुपया होता है।

* चौहान—भगवंत राय खीची से तात्पर्य है, जो चौहान थे।

† रसूलाबाद—कानपुर जिले के अंतर्गत उस नाम के नगर के बीस कोस उत्तर-पश्चिम है। यहाँ तहसील है। मराठा राजत्व (सन् १७५६-६२ ई०) के समय का बना हुआ एक दुर्ग भी यहाँ है।

अति रोर बिसाल सुमेरु हलै ।
थल को तजि दिग्गज भागि चलै ॥
धर रेनु उड़ी नभ जाइ छई ।
तम सूर छिप्यौ जनु रैनि भई ॥ १४ ॥
तब ही सर छाँड़ि मराल गये ।
चकई चकवा बहु सोक लये ॥
अति हर्ष उलूकन नेत्र खुले ।
सकुचे जलजात कुमुंद फुले ॥ १५ ॥
दल के करि घोर चिकार करैं ।
अति मंद चलैं बहु नीर झरैं ॥
रथ खच्चर बेसर ऊँट घने ।
दल अगिनित हैं तेहि कौन गने ॥ १६ ॥

[दोहा]

यहि बिधि जाइ नवाब जू सदानंद कवि धीर ।
सहित चमू यलगार ही पहुँचे सुरसरि तीर ॥ १७ ॥
आइ चौधरी कोड़ को मिल्यौ बेगि येहि बार ।
दुर्जन * नाम प्रसिद्ध तेहि बिदित सकल संसार ॥ १८ ॥

[छंद भुजंगप्रयात]

कही दूत ने दुर्ज्जन सिंह आयो ।
तबै हर्ष हुव पास ताको बुलायो ॥
मिल्यो आइकै ते तबै भेंट दीन्ही ।
तहीं पानि छुइकै तिसै माफ कीन्ही ॥ १९ ॥

---

(१७) यलगार = धावा (करते हुए) । (१९) पानि = हाथ से । इसके अनंतर दोनों की बात चीत में फारसी भाषा का भी कुछ कुछ प्रयोग है ।

* दुर्जनसिंह चौधरी—जिसके हाथ भगवंतराय खीची मारे गए ।

बिगो इद्धुराबी कुजा दुष्ट सोहै।
मिदानं न ईं अस्त कुह बीच सो है ॥
तु दानी सबै भेद क्यों मंत्र कीजै।
मिदानं बले बात ही दुष्ट छीजै ॥ २० ॥
दिगर अर्ज़ मेरी न काहू डरौंगो।
कि तौ सीस देहौं कि जीता धरौंगो ॥
चिरा मीदह्द सीस ऐसा न कीजै।
सोई बात कीजै जथा दुष्ट छीजै ॥ २१ ॥
हमीं कर्द साहब अमा पान पावैं।
न ह्वैहै चिरा रद अबी बाँधि लावैं ॥
बिगीरो सिरोपाव औ पान लीजै।
करौंगो तुरा खूब यों बात कीजै ॥ २२ ॥
तहाँ देइ बीरा निसा ताहि कीन्ही।
भले राफखांने सरंजाम लीन्ही ॥ २३ ॥

[दोहा]

बाँधि लियो पुल ख्याल ही नेकु न लागी बार।
सहित फौज मन मौज सों उतरे सुरसरि पार ॥ २४ ॥

[कवित्त]

सुरसरि जू में बाँध बाँधि लीन्ही ख्याल ही तें,
ऐसी सुध उन्हें दीन्ही दूत बेगि जाइकै।

---

(२०) बिगो इद्धुराबी (?) कुजा = कहो वह दुष्ट विद्रोही कहाँ है। मिदानं न ईं अस्त कुह बीच सो है = जानता हूँ कि वह नहीं है, पहाड़ों में चला गया है। कुह एक स्थान का भी नाम है। दानी = जानता है। बले = हाँ, ठीक है। (२१) दीगर = दूसरो। चिरा मीदेहद = क्यों देते हो। (२२) हमीं कर्द साहब अमा—यही करेंगे साहब पर। पान = किसी बड़े कार्य के आरंभ में पान या बीड़ा देने की प्रथा थी और है। चिरा रद = कार्य का बिगड़ना। बिगीरो सिरोपाव = खिलअत लो। तुरा खूब = तुझको प्रसन्न। (२३) निसा = खातिरजमा, संतुष्ट। राफखाने ?।

पार भईं फौजैं अरु चल्यौ है प्रबल दल
सेस कलमल्यौ रज रही ब्यौम छाइकै ॥
धमक निसान ते गरूर उड़ि जात भईं,
मन पछितान्यौ सुध गई है भुलाइकै ॥
सुनि भगवंत भगवंत को सुमिरि कहै
तुरुक की सुरुक मिटैगी इत आइकै ॥ २५ ॥

[दोहा]

इत नवाब जू कूच कै जाजमऊ * चलि जाय ।
नरवर † दूजे दिन रहे पहुँचे षजुहा ‡ आइ ॥ २६ ॥
तब डेरहु दाखिल भये कीन्ह बिबिध बिधि खोज ।
खबर आइ इतहू दई तीनि कोस पर फौज ॥ २७ ॥

[छंद भुजंगप्रयात]

सुन्यो फौज को नाम यों रोस छायो ।
चल्यो पेसवा खानजादे बोलायो ॥
हमीं के वु बंदे कृपानैग है जू ।
छुटै तोपखाना परी राति है जू ॥ २८ ॥
छुट्यौ तोपखाना भयो रोरु दूनौ ।
कहाँ लौं कहौं जो मनो भार भूनौ ॥

---

(२८) पेसवा = आगे चलनेवाले । बंदे = दास, गुलाम ।

* जाजमऊ —कानपुर जिले में है। अलबरूनी ने कन्नौज से 'जजमौ' की दूरी १२ फर्सख लिखी है । यह गंगा जी के तट पर है और यहाँ सिद्धेश्वर तथा सिद्धदेवी के मन्दिर हैं । इसका प्राचीन नाम सिद्धपुरी है और यह ययाति की राजधानी बतलाई जाती है । गंगा जी पर निकला हुआ ऊँचा टीला राजा चन्द्रमल्ल चँदेला का दुर्ग कहा जाता है ।

† नरवल—कानपुर जिले के अंतर्गत तहसील है ।

‡ खजुहा—२६°३' उ० ८०°३१' पू० । यह कोड़ से साढ़े पाँच कोस पूर्व तथा फतेहपुर से साढ़े दस कोस पश्चिम स्थित है । इसी स्थान पर औरंगजेब ने सन् १६५६ ई० में शाह शुजा को परास्त किया था ।

यही भाँति बीती निसा भो सवारा।
तबै कूच फौजानि बाजे नगारा ॥ २९ ॥
चलै बीर बानैत जो धावलक्कैं।
गरे बीच में सेत बानै झलक्कैं॥
लये हाथ साँगी करी बेधि मालैं।
जिरह खूब सोहै गरे बीच ढालैं ॥ ३० ॥
चली सैन ऐसे सुरेसौ डेरानो।
उठी रेनु के बीच सूरो छिपानौ॥
भजै दिग्गजै चिकुरै चारु मारे।
भई रात मानौ बिना चंद तारे ॥ ३२ ॥

[दोहा]

पहुँचे जाइ नवाब जू जहँ नृप की थी फौज।
देखन ही आगे चले परे ताहि के खोज ॥ ३३ ॥

[मत्तगयंद छंद]

प्रात चले चतुरंग चमू भर रेनु उड़ी तम भानु छिपानो।
कंपत कच्छ सबै अवनी कहि 'नंद' कवी मन इंद्र डेरानो ॥
हालत है नग पन्नग सत्रु क सीस फटो उर साह सकानो।
सोर परो सब अंतरवेदि* जु कीन्ह सहादति खान पयानो ॥३४॥

[छप्पै छंद]

रिपु सुभट्ट भजि जात चलत चामुंड इंद्र गिरि।
बिटप टूटि रज मिलत कूर्म नहिं धरत नेकु थिरि ॥
भार भूमि भरि रहत फनिक फुंकरत संक करि।
हहरि हलत ध्रुव लोक रेनु नभ रहत पंथ भरि ॥

---

* अंतर्वेदी—गंगा जी तथा यमुना नदियों के बीच की भूमि जिसे दो-आब भी कहते हैं।

जब चढ़्यौ सहादति खान जग लोक लोक व्याकुल भयो।
कहि 'सदानंद' भगवंत जू हठि जुद्ध तासु संमुख ठयो ॥३५॥

[दोहा]

कीन्हो कूच नवाब जू आयो तेहि पुर पास।
सुनत स्रवन चकृत भयो कीन्हो बचन प्रकास ॥ ३६ ॥

[छंद भुजंगप्रयात]

बड़े बीर मंत्री जू गोत्री बोलायो।
महाबीर बाँके तिन्हो सीस नायो ॥
कहै राय जैसे कहा मंत्र कीजै।
रहै धर्म जामें वही सिष्ष दीजै ॥ ३७ ॥
उठो बोलि मंत्री दुऔ पानि जोरी।
कहौं मंत्र सोई जथा बुद्धि मोरी ॥
सोई खान जानौ चचेड़ी* जु लीन्ही।
करे छंद केते नहीं फेरि दीन्ही ॥ ३८ ॥
करी जो पट्यो ग्राम† ही में लराई।
लई भूमि जाकी नहीं फेरि पाई ॥

---

* कन्नौज शाहाबाद के पास चचेड़ी एक स्थान है। यहाँ एक दुर्ग है जिस पर सन् १७२९ ई० में बुर्हानुलमुल्क ने चढ़ाई की थी। वहाँ के राजा हिंदूसिंह चंदेला ने दुर्ग की ऐसी दृढ़ता से रक्षा की कि अंत में कपट से उस दुर्ग पर अधिकार करने का निश्चय किया गया। बुर्हानुलमुल्क ने राजा गोपालसिंह भदौरिया को भेजा जिसने हिंदूसिंह को समझाया कि बादशाह से विग्रह करना उचित नहीं। इसलिये यदि वह तीन दिन के लिये दुर्ग छोड़ दे तो उस समय के अनंतर संधि हो जाने पर वह दुर्ग उसे फिर लौटा दिया जायगा। गोपालसिंह के शपथ खाने पर विश्वास कर हिंदूसिंह ने वैसा ही किया; पर बुर्हानुलमुल्क के आज्ञानुसार तीसरे दिन गोपालसिंह ने उस दुर्ग पर स्वयं अधिकार कर लिया। हिंदूसिंह ने निरुपाय हो छत्रसाल बुंदेला की शरण ली। इसके कुछ ही दिनों बाद गोपालसिंह की मृत्यु हो गई।

† प्रतापगढ़—जिले में पट्टी नामक एक तहसील है। इस युद्ध का कोई विवरण नहीं प्राप्त हुआ।

बड़ो सिंह गौरा* सोऊ बात जानो।
कहौं मंत्र सोई महाराज मानो ॥ ३९ ॥
निकासे किते भूप को को गनावै।
लई भूमि जाकी नहीं फेरि पावै॥
महाराज ऐसे तुम्हौ जो सिधारौ।
नहीं फेरि पावो जमीं देह धारौ॥ ४० ॥

[दोहा]

नायब लख्यो नूर खाँ वही कूच यह कीन्ह।
ताके कर जनु ताहि को मनौ चुनौती दीन्ह॥ ४१ ॥

[छंद कुंडलिया]

जानिसार खाँ† तुम्ह हयौ सोइ सुमिरि कै रोस।
करौ मामिले कोटि बिधि पुनि देइय तुव दोस॥
पुनि देइय तुव दोस कैद कैके सिर षंडै।
करौ कोटि उपचार बहुरि कबहूँ नहिं छंडै॥
छंडै बहुरि न तोहि जुद्ध सन्मुख अब ठानी।
और मंत्र नहिं भूलि बात निश्चै यह जानी॥ ४२ ॥

[दोहा]

जब मंत्री ऐसे कह्यो लै कर मैं करवार।
रुंड मुंड कै देब महि करत न लावौं बार॥ ४३ ॥

[छंद गीतिका]

करि रुंड मुंड बितुंड भुंडनि समर हनि मारे खलौ।
भट भूरि तूरि गरूरि डारि मरोरि हौ जौनी टलौ॥

---

(४४) अराति = शत्रु।

* गौरा सिंह के विषय में कुछ पता नहीं चला।

† कोड़ जहानाबाद का फौजदार था। इसके विषय में भूमिका देखिए।

असि हत्थ गहि समरत्थ ज्यों किय पत्थ पौरुष ना चलौ ।
भगवंत है विकराल सिंह अराति मृग सादति-दलौ ॥४४॥

[दोहा]

मोहि कह्यो सो बीरबर तुरतहि बीर बुलाय ।
कहा कहौं जानत यही परी लाज अब आइ ॥ ४५ ॥

[मत्त गयंद छंद]

बीर कहैं भगवंत सुनौ रनभूमि में पाउँ कबौं नहिं टारैं ।
छोड़ि गयंद तुरंगन के पति भूलि कबौं पद ते नहिं मारैं ॥
मुंड अनेक गिरैं धर में भरमैं नहिं षग्ग द्वऊ कर भ्कारैं ।
ज्वानन कै हुलसै बिरचै रन सादति खानको आनन फारैं ॥४६॥

[दोहा]

जोधन को संवाद सुनि सोचि डुलायो सीस ।
करि बिचारि आनंदजुत करन लग्यो बकसीस ॥ ४७ ॥

[लीलावती छंद]

तीछन निपटि कटक पर खंडनि पच्छिन के जनु रोस भरे जू ।
चलत अवनि पग लगत नहिंन थिर लखि गति मनहिं समीर डरे जू ॥
कसे जीन जगमगित जवाहिर मनसिज ज्यों बहु रूप धरे जू ।
'सदानंद' भगवंत सिंह नृप ते बाजी बकसीस करे जू ॥४८॥

[मत्तगयंद छंद]

मत्त चलै अति मत्त सदा मद गंडन ते बहु नीरु भ्करै जू ।
कज्जल से गिरि राजत भू पर ताहि लखे घन संक धरे जू ॥
है जु सिंगार निजै दल कौ अरि के दल कौ जिम काल धिरै जू ।
'नंद' सदा भगवंतसिंह नृप ते बारन बकसीस करै जू ॥४९॥

(४७) बकसीस=दान, खैरात । (४८) पर = शत्रु ।

॥ दोहा ॥

अपर दान अगिनित दये जथा जउन बेउहार ।
पुर अनंद प्रति मंदिरनि होत संख धुनि द्वार ॥ ५० ॥
पुर में पहुँची खबर जब दीन्ही दूत जवाब ।
दच्छिण जोजन एक पर आयो प्रबल नवाब ॥ ५१ ॥
सुनत बचन भगवंत नृप तबहि रह्यो ह्वै मौन ।
कै बिचार आनंदमय गयो आपने भौन ॥ ५२ ॥
पानि जोरि रानी कहै सुनहु महामतिधीर ।
नहिं बिरोध इन्ह से करौ ये हैं बड़ अमीर ॥ ५३ ॥
भूमि छाँड़ि कै पार चलि कछु दिन तहाँ गँवाय ।
जब दिल्ली को जाँइगे बहुरि बसैंगे आय ॥ ५४ ॥

[मत्तगयंद छंद]

भूमि हमारि खई यह है जिह में लख-दान अनेक कियो है ।
जाचक और अजाचक को मन हर्षि सदा गज बाजि दियो है ॥
केतिक सत्रु निपात किये तुम जानति हो हम जीति लियो है ।
नाम प्रसिद्ध अहै जग में मम भूमि तजे फल कौन जियो है ॥५५॥

[दोहा]

ऐसो कहि बाहर कढ़्यो करि बिचार मन कोरि ।
जीति लेउँगो निमिष में कहे बहोरि बहोरि ॥ ५६ ॥

[चंद्रकला छंद]

करि धीरज कों नृप बैठि रह्यो तब ही अस दूतन बात कही ।
प्रभु दच्छिन आइ नवाब पर्‍यो कित है करिहै तुव खेत जही ॥
सुनि कोपि कै हत्थ कृपान गह्यौ यह बूझत साइति है कबही ।
यक बिप्र कहे बिबि दंडु बिताइकै आपु कहैं अबही अबही ॥५७॥

---

(५७) बिबि = दो ।

यह बात सुनी जब ही नृप की अति आतुर ह्वै सब बीर सजै ।
जिरहै अरु कौच दई सिर कूँडि लखे मन में छल धीर तजै ॥
कटि त्रोन कसे धनु बान लये अरि के कुल काल प्रतच्छ रजै ।
रन जुद्ध बिरुद्ध महा बिजई कढ़ि बाहर ह्वै जिमि सिंह गजै ॥५८॥

[दोहा]

बूझ्यो नृपति 'नवाब जू करत कहा हैं काम ?'
'अब डेरन दाखिल भयो करन लग्यो आराम' ॥ ५९ ॥
तब मुसुकाइ महीप कहि सुनिये बचन प्रमान ।
तुरुक-हीन अवनी करौं कहा सहादति खान ॥ ६० ॥
दूतन कह्यो नवाब ते समाचार सिर नाय ।
अति गरूर अरि की सुनी तुरत उठ्यो बिलखाय ॥ ६१ ॥

[छंद गीतिका]

बिलखाय माँगि गयंद को तब षग्ग लै उतही चढ़्यो ।
अति बाजि दुंदुभि संक लंक नवाब जू तब ही कढ़्यो ॥
चढ़ि कै तुरंगन बीर धीर प्रचंड आतुर से चले ।
तनु-त्रान राजत चारु ते तनु जानु साहित बादले ॥६२॥
चलि फौज सादति खान की गढ़ छोड़ि कै गरभी भगे ।
भजि जात दिग्गज डोल परबत सार सो अहि यों जगे ॥
तब जाइ कैं तहँ ही जुरे जहँ खेत बैरिन को रचै ।
उततैं चल्यो भगवंत जू रन आजु तो हम सों सचै ॥ ६३॥

[छंद त्रोटक]

सब बीर भयानक रूप ठये ।
बिच भालन्ह चंदन खौरि दये ॥
सिर ढालन कूँड़ि बिराजत हैं ।
जिन्ह को लखिकै घन लाजत है ॥ ६४ ॥

---

(५८) जिरह = बखतर । कूँड़ि = लोहे का टोप ।

जिरहै तनत्रान न बीर कटे।
जिन्ह देखत ही अनुराग बटे ॥
सकती पुनि हाथ न दंड धरे।
जिन्ह के पहँ आवत काल डरै ॥ ६५ ॥
करि जोरहि फौज दबाइ लई।
दल दुंद जुरे अति दुंद भई ॥
हुलसे भट जुद्ध लखे बिरचै।
असि काढ़ि अराति करै किरचै ॥ ६६ ॥

[दोहा]

तब सम्मुष ऐसे चल्यौ जानौ बड़ौ गरीब।
पग पग नापत अवनि को मानौ करत जरीब *॥ ६७ ॥

[त्रिभंगी छंद]

छूटी हथनालैं औ सुतनालैं चली जँजालैं दाबि लिया।
पुनि दुंदुभि बाजै सुनि घन लाजै बहु भट साजै रोस पिया ॥
रहट्ठ बहु छुट्टै बहु सिर टुट्टै जोधन कुट्टै मारि दिया।
भे मोगल दिवाने गिल बिललाने आजु खुदा ने कहर किया ॥६८॥
फौजैं जब देषी घन सम लेषी भूली सेषी डर्‌यौ हिया।
धीरज मन त्यागे चलै न भागे प्रभु सों माँगा चहै जिया ॥
यहि बिधि भट जेतें अंकित तेते धीरज चेते कहै बिया।
भे मोगल दिवाने गिल बिललाने आजु खुदा ने कहर किया ॥६९॥

[दोहा]

तब भूपति बीरन सहित सारद को सिर नाइ।
दौरि परे दल बीच मों कूदे संख बजाइ ॥ ७० ॥

---

(६८) हथनाल = हाथी पर रखी हुई बड़ी तोप। सुतनाल = ऊँटों पर चढ़ाई हुई छोटी तोप। जँजाल=छोटी लंबी तोप। कहर = प्रलय, क्रोध।

* जरीब—भूमिकर निश्चित करने को भूमि नापने का वह गज जो लोहे की कड़ियों का बना रहता है।

[छंद भुजंगप्रयात]

परे दौरि कै ते तबै षग्ग झारैं ।
फटै ज्यौं घटा घोर चौंधा निहारैं ॥
परी मारु ऐसी खरी बाढ़वारी ।
करैं टूकड़ै द्वै महासानवारी ॥ ७१ ॥
किती नागिनी सी चली है सिरोही ।
भगे देखि कै बीर लागे डरोही ॥
प्रलै काल सो भाजहीं बान छूटे ।
चली रामचंगी किते सीस टूटे ॥ ७२ ॥
छुट्यौ तोपखाना कहाँ कौन चालै ।
भयौ रोर उत्पात सों भूमि हालै ॥
चलै जो जुनब्बी चमक्कै छटा ज्यौं ।
कटै बारनै-जुत्थ फाटै घटा ज्यौं ॥ ७३ ॥

[ससिवदना छंद]

बहुरि म बोलै । तहँ धर डोलै ॥
अति भट भारै । अवनि पछारै ॥७४॥
उदर बिदारै । भुजा उचारै ॥
अरु सिर कट्टे । महि अति पट्टे ॥७५॥
पुनि भट कुद्धे । निपटि बिरुद्धे ॥
अति रन-माते । कहि जै बातें ॥७६॥

[संखनारी छंद]

लखे जुद्ध जाके । महावीर बाँके ॥
करै स्वाँग गाहैं । नितै खेत चाहैं ॥७७॥

---

(७२) सिरोही = सिरोही राज्य की बनी हुई तलवार ।
(७३) जुनब्बी = हिलनेवाला गोला ।

करै जुद्ध लागे । चले मत्त आगे ॥
कृपानै बजावैं । बड़ो सुख्ख पावैं ॥ ७८ ॥

[रूपघना छंद]

नृप भगवंत जब लीन्ही है कृपान कर,
निपट अडोल बीर तेऊ उठैं हौलि हौलि ।
कीन्हो है धरा में अति भारत धवल महा,
ढाहै बाट बारी सिर जथा धरै तौलि तौलि ॥
भारे भट मारे धाय घूमै मतवारे चले,
स्रोनित पनारे ज्यों अटा के दये खोलि खोलि ।
जोगिनी सुचित्त भरि खप्पर बचत नहिं,
गानन रचत बहु मुंड उठत बोलि बोलि ॥ ७९ ॥

[सर्वकल्यान दंडक]

चमकै छटा सी ज्यौं घटा सो दल फारि देत,
केतिक कटा कै भट जुत्थन सुभाइकै ।
भूप भगवंत की कृपान ज्यौं करत खेदु,
खंडै खल सीस भुज समर चुनाइकै ॥
जोति सी जगी है अनुराग सों रँगी है,
वज्र ज्वाल सों पगी है गति अद्‌भुत पाइकै ।
आरत कौं छाँड़ते विचारि तन मानी मूढ़,
मोगल सँधारत तुराब खान खाइकै ॥ ८० ॥

[दोहा]

सुनिये मोगल तुराब खाँ था नवाब के संग ।
सो चरित्र जैसो भयो तैसो कहौं प्रसंग ॥ ८१ ॥
भूप चल्यौ जब समर को बूझयो दूत बुलाइ ।
केहि सरूप सादति अहै मोहिं कहौ समुझाइ ॥ ८२ ॥

पानि जोरि के दूत कह सुनो बचन नृप गूढ़ ।
अति उदंड भुज दंड है बरस साठि कौ बूढ़ ॥ ८३ ॥
यहै बात नृप चित चढ़ी कीन्हो समर पयान ।
यह चरित्र जैसो भयो तैसो कहौं प्रमान ॥ ८४ ॥
सादति खाँ कुंभी चढ्यौ मुंडा हौदा सोइ ।
दूजे बारन एलची पीछे कुंजर दोइ ॥ ८५ ॥
करी चारि की गोल तहँ आगे बान निसान ।
पुनि पचास पदतीत हो नेजा बीस प्रमान ॥ ८६ ॥
और चमू पीछे कछू तौन न होत लखाइ ।
उत्तर दिसा तुराब जिमि तैसो कहौं बुझाइ ॥ ८७ ॥
अंबारी गज पै कसी तापर चढ्यौ तुराब ।
अंतर बीसहि दंड को ठाढ़ो जितै नवाब ॥ ८८ ॥
साथ चमू चतुरंग चय जानहु सादति सोइ ।
एक रूप * दोऊ हते जानै बिरला कोइ ॥ ८९ ॥

[त्रोटक छंद]

नृप जानि सहादति मोह बढ्यौ ।
रुख जानि करी पर बाजि चढ्यौ ॥
मुगलै भ्रम-भीत न साँस लई ।
नृप साँगि हनी उहि पार गई ॥ ९० ॥

---

(८५) कुंभी = हाथी । एलची = राजदूत ।

* जिस समय बुर्हानुलमुल्क पड़ाव पर आए, उस समय वे हरे रंग की पोशाक पहने हुए थे । जासूसों ने भगवंतसिंह से उसके हरे वस्त्र तथा सफेद डाढ़ो की पहिचान बतलाई । इन्होंने तुरंत धावा किया । बुर्हानुलमुल्क भी युद्धार्थ बाहर निकले; पर इस समय वे सफेद कपड़ा पहने हुए थे । अबूतुराब खाँ तूरानी, जो उसका एक मान्य सरदार था, उस समय दुर्भाग्य से हरी पोशाक पहने हुए था और उसकी दाढ़ी भी सफेद थी । भगवंतसिंह उसीको नवाब समझकर उसके हाथी पर टूटे और घोड़ा कुदाकर बर्छी इस जोर से मारी कि वह पीठ की ओर बाहर निकल गई । (सिअरुल् मुताखिरीन उर्दू जि० १ पृ० ६१)

दिय खग्ग बहोरि सही सिर है।
कटि जात भई सिगरी जिरहै ॥
हुलसे अँग अंग अनंद भई।
तनत्रान तनी सब टूटि गई ॥ ९१ ॥
बिहँस्यौ नृप मोद बढ्यौ मन में।
जनु राजत चारु ससी घन में ॥
तब सादति मूक भयो न बुजे।
भ्रम बात लगे जनु पात डुलै ॥ ९२ ॥

[दोहा]

कित नबाब जूझन लग्यौ बीर समर रस मंत।
बोल्यौ अबहि तुराबखाँ कह्यौ बार भगवंत ॥ ९३ ॥

[छंद त्रोटक]

उतपात महा कवि कौन कहै।
नहि धीरज हू कर धीर रहै ॥
चमु भागि समूह चली सिगरी।
धुनि सीस नवाब कहै बिगरी ॥ ९४ ॥
उत खानमहम्मद कोप करै।
दलसिंह मले एहि ओर भिरै ॥
उत दीनमहम्मद खग्ग धरै।
इत नील किते महि मुंड भरै ॥ ९५ ॥
उत खान अली सँग बीर भले।
इत कोपि भवानि प्रसाद दले ॥
उत मीर मुहम्मद धीर रजौ।
इत मर्दनसिंह महा गरज्यौ ॥ ९६ ॥
उत सेरअली चमु मंडत है।
जैसिंह इतै रन खंडत है ॥

० अहि भाँति दुओ दल बीर भिरे।
अरि मारत हैं रनभूमि घिरे ॥ ९७ ॥

[सर्वकल्याण दंडक]

मारे मीर महमद औ छारे रिपु भारे भारे,
पाटे मुंड काटे किते छोनी मेह सत हैं।
लुत्थन पै लुत्थ परि प्रबल समर्थन की,
कुंडन रुधिर लखि क्रूर दहसत हैं ॥
बोले बिकराल काल जंबुक कराल हाल,
भूत दैंत ताल कर भैरो बिहँसत हैं।
आलिन समेति मतवारी सी फिरति रन,
जै जै नृप जू की कहि काली रहसति हैं ॥ ९८ ॥

[दोहा]

जुरयौ दुर्जनैसिंह रन भिरत प्रचारि प्रचारि।
महावीर भगवंत के नेकु न मानत हारि ॥ ९९ ॥
तासु बंधु ता को तनै तेजसिंह तेहि नाम।
लै कृपान कर क्रुद्ध ह्वै कीन्ह बिषम संग्राम ॥ १०० ॥
तज्यौ प्रान हठि समर सों रुंड मुंड करि खेत।
प्रलै काल सम जुद्ध लखि कातर होत अचेत ॥ १०१ ॥

[छप्पै छंद]

अति उदंड बरिबंड बीर जित खंडहि खंडै।
जे समत्थ तेहि सत्थ हत्थ गहि जुत्थन्ह दंडै ॥
जुद्ध क्रुद्ध अबिरुद्ध सद्धरन खेत दबावै।
गज अमत्त अरु मत्त मारि दिसि धारे भगावै॥
बिकराल रूप भगवंत को लखि नबाब डर सों त्रस्यौ।
उतपात घात बहु बात जनु काल बेगि चाहत ग्रस्यौ ॥ १०२ ॥

कँप्यौ लोक अवलोकि सोक भय जहँ तह बढ्यौ।
लखि चरित्र विधि-हरि-हर हिय अनुराग उपज्यौ॥
प्रेरित गन चलि बेगि समर अवनी महँ आयौ।
कहि प्रसंग कर जोरि अमियमय बचन सुनायो॥
अपसरि सुचारु चहुँ दिसि चमर चारु ढरत आनँद भयो।
राजाधिराज भगवंत जू चढ़ि विमान सुरपुर गयो॥ १०३॥

[दोहा]

संवत सत्रह आनवे कातिक मंगलवार।
सित नौमी संग्राम भो बिदित सकल संसार॥ १०४॥

इति श्री कवि सदानंद विरचिते भगवंतसिंह खीची और नवाब सहादति षान जुद्ध बरननो नाम सुभ सुभमस्तु सुभं भूयात्॥ लि० मिति सावन बदी ८ अष्टमी सन् १२५७ बारह सय सतावन मा लिखा।